पुरुष-पात्र

जीमूतवाहन	विद्याधर-चक्रवर्ती
जीमूतकेतु	जीमूतवाहन का पिता
आत्रेय (विदूषक)	जीमूतवाहन का मित्र
मित्रावसु	सिद्ध-युवराज, मलयवती का भाई और सिद्धराज विश्वावसु का पुत्र
विट	हास्यरस का पात्र
चेट	विट का सेवक
वसुभद्र	कंचुकी
सुनन्द	प्रतिहार
शंखचूड़	नाग
राजसेवक	शेषनाग वासुकी का सेवक
गरुड़	नाग-भक्षक पक्षिराज

स्त्री-पात्र

मलयवती	जीमूतवाहन की धर्मपत्नी
चतुरिका, मनोहरिका	मलयवती की दासियाँ
नवमालिका	विट की स्त्री, मलयवती की दासी
वृद्धा	शंखचूड़ की माता
महारानी	जीमूतवाहन की माता
गौरी	देवी पार्वती

ख

नाटक में संकेतित व्यक्ति

विश्वावसु	सिद्धराज, मित्रावसु और मलयवती का पिता
मतङ्ग	जीमूतवाहन का शत्रु
वसुभूति	कल्पवृक्ष का याचक ब्राह्मण
शेष	नागराज

वध्यशिला

पहला अंक

स्थान—मलय पर्वत के निकट एक वन

(विद्याधर जीमूतवाहन और विदूषक का प्रवेश)

जीमूतवाहन—धिक्कार है इस यौवन को। यह विषयवासनाओं का मूल है, अस्थायी है। भले-बुरे का विचार इसमें ज़रा भी नहीं रहता। निन्दनीय और इन्द्रियों के अधीन यह यौवन आनन्द का साधन तभी बन सकता है जब यह भक्ति से माता-पिता की सेवा में व्यतीत हो।

विदूषक—(क्रोध से) इन मृत-प्राय बूढ़ों की सेवा में वनवास का दुख भोगते-भोगते अवश्य तुम दुखी हो गये होगे। बस, अब कृपा करो। माता-पिता की सेवा का हठ छोड़ो और यथेष्ट राज्य-सुख भोगो।

जीमूतवाहन—मित्र ! तुम्हारा विचार ठीक नहीं है। पुत्र को पिता के सामने धरती पर बैठने में जो आनन्द है, वह राज्य-सिंहासन पर बैठने में नहीं। पुत्र को पिता की चरण-सेवा में जो सुख है, वह राजाओं से घिरे रहने में नहीं। पुत्र को पिता के साथ खाने में जो शान्ति मिलती है, वह त्रिलोक के आनन्द-भोग में नहीं। पिता को छोड़कर राज्य केवल दुखभार है, इसमें कोई लाभ नहीं।

विदूषक—(स्वगत) आश्चर्य है इसकी पितृ-भक्ति पर (सोचकर) अच्छा, यह भी कह देखूँ। (प्रकट) मित्र ! केवल राज्य-सुख के ही लिये इसे नहीं कहता हूँ, किन्तु तुझे कुछ और भी तो करना है।

जीमूतवाहन—(हंसकर) मित्र ! मैंने जो कुछ करना था वह कर लिया। देखो, प्रजा और राजपुरुषों को न्याय-पथ पर लगा दिया, सत्पुरुषों को सुखी कर दिया, बन्धुओं को अपने तुल्य अधिकार दे दिए, राज्य में रक्षा का पूरा प्रबन्ध भी कर दिया, ब्राह्मण वसुभूति को कल्प-वृक्ष भी दे दिया। बताओ, इससे अधिक और क्या कर्तव्य शेष है ?

विदूषक—(सामने देखकर) ठण्डी-ठण्डी हवा के झोंकों से हृदय पुलकित होने लगा है । वायु चन्दन के वृक्षों से सुगन्धित और फव्वारों के जलकणों से शीतल हो रही है ।

जीमूतवाहन—(देखकर आश्चर्य से) अरे ! हम तो मलयपर्वत पर पहुँच ही गये ! (चारों ओर देखकर) अहा ! यह पर्वत कैसा रमणीय है ! इस पर मत्त दिग्गजों के कपोलों की रगड़ से चन्दन वृक्ष टूट गये हैं । उनमें से रस बह रहा है । समुद्र की लहरों के टकराने से इसकी कन्दराओं के भीतर से शब्द गूँज रहा है । यहाँ सिद्धों की स्त्रियों के चलने फिरने के कारण उनके पाँवों की महावर से मोती के समान स्वच्छ शिला लाल हो गई हैं । इस पर्वत को देखकर मेरा मन अकस्मात् उत्सुक हो रहा है । अब आओ, इस पर चढ़कर रहने योग्य कोई स्थान देखें ।

विदूषक—ऐसा ही करें । (आगे आकर) आप चलिये ।

(दोनों चढ़ते हैं)

जीमूतवाहन—(दाहिनी आँख का फड़कना सूचित करके) ओहो, मित्र ! मेरी दाहिनी आँख तो फड़क रही है । पर मुझे कुछ फल नहीं चाहिये, मुनियों का वचन भी झूठा नहीं

होता। न जाने क्या फल होगा।

विदूषक--मित्र ! यह अवश्य किसी समीपवर्ती कल्याण की सूचना दे रहा है।

जीमूतवाहन—अच्छा, तुम्हारा वचन ही पूरा हो।

विदूषक—(देखकर) मित्र ! देखो, यह तो तपोवन-सा प्रतीत होता है। इसमें हरे-भरे वृक्ष सुशोभित हैं। हवि के सुगन्ध से सना हुआ धूआँ इधर-उधर फैल रहा है। हरिनों के बच्चे निर्भय होकर सुख से बैठे हुए हैं।

जीमूतवाहन--आपने ठीक कहा। यह तपोवन ही है। दया के कारण यहाँ वस्त्र के लिये वृक्षों की मोटी-मोटी छाल नहीं छीली जाती है। आकाश के समान स्वच्छ झरनों के जल में डूबे हुए टूटे-फूटे कमण्डल साफ़ दीख रहे हैं। इधर-उधर विद्यार्थियों की टूटी फूटी मूंज की मेखलायें भी दिखाई पड़ती हैं और नित्य सुनने से यह तोता भी साम-गान कर रहा है। अच्छा, तो आओ चलकर देखें।

(प्रवेश करते हैं)

जीमूतवाहन—(विस्मय से देखकर) अहह ! तपोवन कितना शान्त और रमणीय है ! कहीं तो प्रसन्न-चित्त मुनि-जन संदिग्ध वेदवाक्यों के अर्थों पर विचार कर रहे

हैं । कहीं विद्यार्थी हरी-हरी समिधाओं को तोड़ रहे हैं। कहीं कन्यायें नन्हे नन्हे पौधों को सींच रही हैं। यहाँ पर वृक्षों को भी अतिथि-सत्कार की कैसी शिक्षा दी गई है ! ये वृक्ष भौंरों के मधुर गुञ्जार से मेरा स्वागत कर रहे हैं । फलों के बोझ से झुकी हुई शाखाओं से मुझे नमस्कार कर रहे हैं। पुष्प-वर्षा कर मुझे अर्घ दे रहे हैं। यह तपोवन रहने योग्य है । यहाँ रहकर हमें सुख मिलेगा।

विदूषक--मित्र ! देखो, ये हरिन कुछ सुनते से मालूम होते हैं। ये अपनी गर्दन टेढ़ी किये हैं। इनके निश्चल मुँह से अध-चावी दाभ के कौर बाहर गिर रहे हैं । एक कान झुकाकर एक तरफ़ लगाये हुए हैं और सुख अनुभव करते हुए आँखें मूँदे पड़े हैं।

जीमूतवाहन--(कान लगाकर) मित्र ! तुमने ठीक जाना। ये हरिन गर्दन टेढ़ी किये हुए घास चबाने का शब्द बन्द करके भौंरों की गूँज के सदृश वीणा के शब्द को ध्यान से सुन रहे हैं।

विदूषक—तपोवन में कौन गा रहा है ?

जीमूतवाहन—कोमल उँगलियों से आहत वीणा की डोरियों के गूँजने से प्रतीत होता है कि काकली-प्रधान गान

हो रहा है । (उँगली से संकेत करके) इस मन्दिर में कोई दिव्याङ्गना देवता की आराधना के लिये वीणा बजा रही है ।

विदूषक—मित्र ! चलो हम भी देवालय देखें ।

जीमूतवाहन—हाँ, मित्र ! तुमने ठीक कहा—देवता वन्दनीय हैं । (जाते हुए ठिठक कर) मित्र ! कदाचित् इस कन्या को देखना हमारे लिये अनुचित हो, तो हम लोग इस तमाल वृक्ष के झुरमुट के पीछे बैठकर देव-दर्शन के अवसर की प्रतीक्षा करें ।

(वैसा ही करते हैं)

(भूमि पर बैठी हुई वीणा बजाती हुई मलयवती का चेटीसहित प्रवेश)

मलयवती—(वीणा के साथ गाती है)

विकसित-कमल-पराग-
गौर-वर्ण सुन्दर-प्रकाश ।
गौरी सुनलो विनती आज
वाञ्छित प्रकट हो तुमरे प्रसाद ।
चरण पड़त दासी —

जीमूतवाहन—(कान लगाकर) वाह, वाह ! क्या ही अद्भुत गाना-बजाना है । इसमें वीणा बजाने की दस तरह

की चतुराई स्पष्ट दीख रही है। तीन प्रकार की लय की गति–द्रुत, मध्य और विलम्बित–पृथक् पृथक् दिखाई है। गोपुच्छ आदि तीनों यतियों का भी इसमें क्रम से अच्छा जमाव हुआ है। तीनों वाद्य-विधियाँ भली-भाँति दिखाई गई हैं।

चेटी—(प्रेम से) राजकुमारी ! आपने बहुत देर वीणा बजाई है। क्या आपकी उँगलियाँ थकी नहीं ?

मलयवती—(झिड़क कर) अरी ! भगवती के सामने वीणा बजाने से क्या थकना ?

चेटी—राजपुत्री ! मैं कहती हूँ कि निष्ठुर देवी के सामने वीणा बजाने से क्या लाभ। यह देवी इतने दिनों से आराधित होकर भी फल नहीं देती।

विदूषक—यह तो कन्या है, देवी की आराधना के लिये यहाँ बैठी है। तो चलो, हम भी भीतर जाकर देवी का दर्शन करें।

जीमूतवाहन—इसमें क्या दोष है ? किन्तु यह सम्भव है कि हमें देखकर बालिकोचित लज्जा और भय के कारण यह यहां देर तक न ठहरे। इसलिये इस लताकुञ्ज की आड़ में होकर इनका मधुरालाप सुनें।

विदूषक—बहुत अच्छा। (दोनों देखते हैं)

विदूपक—(देखकर आश्चर्य से) मित्र ! देखो, अहा ! क्या ही आश्चर्य है । यह तो न केवल वीणा-विज्ञान से ही किन्तु तदनुरूप सौन्दर्य से भी आँखों को आनन्द दे रही है । तो फिर यह कौन होगी ? क्या यह कोई देवी होगी ? या नाग-कन्या ? अथवा विद्याधर-पुत्री ? या सिद्ध-कुल की वालिका ?

जीमूतवाहन—(उत्सुकता से देखकर) मित्र ! यह कौन है, यह तो मैं नहीं जानता, किन्तु इतना अवश्य जानता हूँ कि यदि यह अप्सरा है तो इन्द्र कृतार्थ हो गये । यदि नागकन्या है तो इसके मुखचन्द्र के होते हुए पाताल चन्द्रमा से रहित नहीं । यदि यह विद्याधरी है तो हमारी जाति का महत्त्व है ही । यदि यह सिद्ध-कन्या है तो तीनों लोकों में सिद्ध लोग प्रसिद्ध हो गये ।

विदूपक—(जीमूतवाहन की ओर देखकर सहर्ष स्वगत) धन्य-भाग्य ! चिरकाल के पश्चात् यह विषयों के हाथ पड़ा हैं । (अपने आप को संकेत करके भोजन का अभिनय करते हुए) अथवा अब यह मुझ ब्राह्मण के हाथ पड़ गया ।

चेटी—(सप्रेम) राजकुमारी ! छोड़ दो, इस निष्ठुर गौरी के आगे वीणा बजाने से क्या लाभ ? (यह कह कर वीणा छीन लेती है)

मलयवती—(सक्रोध) सखी ! भगवती गौरी की निन्दा मत करो। आज भगवती गौरी ने मेरे ऊपर कृपा की है।

चेटी—(सहर्ष) राजपुत्री ! ज़रा बताओ तो कैसी कृपा ?

मलयवती—मुझे स्मरण है कि आज स्वप्न में जब मैं वीणा बजा रही थी तो गौरी ने मुझे कहा—"बेटी ! मैं तेरे इस वीणा-विज्ञान तथा कन्या-दुर्लभ असाधारण भक्ति से प्रसन्न हूँ। इसलिये मैं वर देती हूँ कि कोई विद्याधर-चक्रवर्त्ती शीघ्र ही तेरा पाणिग्रहण करेगा।"

चेटी—(सहर्ष) यदि यही बात है तो स्वप्न क्यों कहती हो ? देवी ने मुँह-माँगा वर दिया है।

विदूषक—(सुनकर) मित्र ! अब हमारा भी देवी-दर्शन का अवसर आ गया है। आओ, चलें।

जीमूतवाहन—ना ही चलें तो ठीक है।

विदूषक—(झिझकते हुए जीमूतवाहन को बलपूर्वक खींचकर तथा समीप जाकर) आप का कल्याण हो। देवी ! आपकी दासी ठीक ही कहती है। सचमुच देवी ने यही वर दिया है।

मलयवती—(व्याकुलता से उठकर जीमूतवाहन की ओर संकेत करके) सखी ! यह कौन है ?

रीझ रही है। ऐसे ही हो, सो कहती हूँ। (प्रकट) राजपुत्री! यह ब्राह्मण ठीक कहता है। आपको अतिथि-सत्कार करना ही चाहिये। सो किस लिये ऐसे महानुभाव के सत्कार के विषय में मूढ़ सी खड़ी हो। अथवा तुम रहने दो, मैं ही यथोचित सत्कार किये देती हूँ। (जीमूतवाहन की तरफ संकेत करके) आप का स्वागत हो। आइये, इस आसन पर बैठिये।

विदूषक—मित्र! यह ठीक तो कहती है। थोड़ी देर बैठकर विश्राम करलें।

जीमूतवाहन—हाँ, तुम्हारा कहना ठीक है।

(दोनों बैठ जाते हैं)

मलयवती—(चेटी से) अरे, तू तो परिहास में ऐसा कर रही है। यदि कोई तपस्वी देख लेगा तो मुझे निर्लज्ज ही समझेगा।

(तपस्वी का प्रवेश)

तपस्वी—कुलपति कौशिक ने मुझे आज्ञा दी है कि "पुत्र शाण्डिल्य! पिता की आज्ञा से आज सिद्धराज मित्रावसु अपनी बहन मलयवती के वर के लिये कुमार जीमूतवाहन को ढूँढ़ने गया है। भावी विद्याधर-चक्रवर्ती जीमूतवाहन यहीं कहीं मलयपर्वत पर

विद्यमान हैं। मित्रावसु की प्रतीक्षा में मलयवती के मध्याह्न-कालीन यज्ञवेला का उलङ्घन न हो जाए, इसलिये उसे बुला लाओ!" तो तपोवन के गौरी-मन्दिर में जाऊँ। (घूमकर भूमि पर देखकर आश्चर्य से) अरे! इस धूलि में ये किसके पाद-चिह्न हैं। इनमें तो चक्र-चिह्न स्पष्ट दीख रहे हैं। (सामने जीमूतवाहन को देखकर) ये इसी महापुरुष के पाद-चिह्न हैं। इसके सिर पर उष्णीष शोभा दे रहा है, भौहों के मध्य में भौंरी है, आँखें रक्त कमल के समान ताम्र हैं, छाती सिंह को नीचा दिखाती है और दोनों पैरों पर चक्र-चिह्न हैं। इसलिये मेरा यह विश्वास है कि यह विद्याधर चक्रवर्त्ती की पदवी प्राप्त किये बिना विश्राम नहीं लेगा। अथवा सन्देह की आवश्यकता ही नहीं। सचमुच यह जीमूतवाहन ही होगा। (मलयवती को देखकर) राजपुत्री भी यहीं है। (दोनों को देखकर) यदि विधाता इस योग्य जोड़े को मिलादे तो चिरकाल के बाद विधि की घटना युक्तकारी होगी। (पास आकर जीमूतवाहन के प्रति) आपका कल्याण हो!

जीमूतवाहन—भगवन्! जीमूतवाहन प्रणाम करता है।

(उठना चाहता है।)

तपस्वी—रहने दीजिये। उठने की आवश्यकता नहीं। अतिथि

मत्र का गुरु होता है। आप ही हमारे पूज्य हैं। अतः आराम से बैठिये।

मलयवती—आर्य! प्रणाम करती हूँ।

तपस्वी—(मलयवती से) बेटी! अपने योग्य वर को प्राप्त हो। राजपुत्री! आपको कुलपति कौशिक ने कहा है—"मध्याह्न कालीन यज्ञ का समय व्यतीत हो रहा है, इसलिये शीघ्र आओ।"

मलयवती—जो गुरु जी की आज्ञा।

(उठकर सांस छोड़ती हुई, लज्जा और अनुराग से नायक को देखती हुई, तपस्वी के साथ चली जाती है।)

(जीमूतवाहन उत्कण्ठा से श्वास लेकर मलयवती को देखता है)

विदूषक—जो देखना था, सो देख लिया। तो चलें। दोपहर की धूप की तेज़ी से मेरी जठराग्नि धधक रही है। इसलिये आओ, ब्राह्मणों के अतिथि बनकर मुनिजनों द्वारा प्राप्त कन्द-मूल फल आदि से ही अपना प्राण-धारण करें।

जीमूतवाहन—(ऊपर देखकर) भगवान् सूर्य सिर पर आगए। गर्मी के कारण गजराज की बुरी दशा हो रही है। इसके दोनों कपोल ठण्ड की चाह से तत्काल रगड़े हुए चन्दन

वृक्षों के रस से सफेद हो रहे हैं। निरन्तर हिल रहे कर्ण-रूपी तालवृन्तों से अपने मुँह पर हवा कर रहा है। अपनी सूँड द्वारा जल छिड़क कर इसने छाती को खूब भिगो लिया है।

[प्रस्थान]

(पटाक्षेप)

दूसरा अंक

स्थान—मलयपर्वत का एक भाग

(चेटी का प्रवेश)

चेटी—राजकुमारी मलयवती ने आज्ञा दी है कि "मनोहरिका! भाई मित्रावसु ने आज देर कर दी है । इसलिये जाकर देख तो वे लौटे हैं या नहीं"। (घूमती है। सामने देखकर) यह कौन जल्दी-जल्दी इधर को ही आ रही है ? (पहचानकर) क्या चतुरिका है ?

(चतुरिका का प्रवेश)

मनोहरिका—(पास जाकर) सखी चतुरिका ! क्या बात है कि मुझ से बिना मिले ही इस प्रकार जल्दी जा रही हो ?

चतुरिका—सखी मनोहरिका ! राजकुमारी मलयवती ने मुझे आज्ञा दी है कि "चतुरिका ! मैं फूल चुनते-चुनते थक गई हूँ । मेरे परिश्रान्त शरीर के मनोविनोद के लिये कोमल केले के पत्तों से ढके हुए चन्दन-कुञ्ज में रखी हुई चन्द्रमणिशिला को सज्जित कर दो ।" जैसा कहा था वैसा मैंने कर दिया है । सो जाकर राजकुमारी से निवेदन करती हूँ ।

नहीं । कहो तो सही, मालूम पड़े ।

चतुरिका—वह तुम्हारा मुँह-माँगा वर ।

मलयवती—(सहसा हर्ष से उठकर दो तीन पग आगे बढ़कर) व है ? कहाँ है वह ?

चतुरिका—(उठकर मुस्कराकर) राजकुमारी ! वह कौन ?

(मलयवती बैठकर लज्जा से नीचा मुँह कर लेती है)

चतुरिका—राजकुमारी ! मैं तो यह कहना चाहती थी कि देवी ने आपको यह मनचाहा वर दिया है और फिर आपने स्वप्न की बात चलने पर उसी क्षण जिस सुन्दर युवक को देखा था वही आपकी इस अस्वस्थता का कारण है । इसी लिये यह स्वभाव से शीतल चन्दन-लतागृह भी आज आप को प्रकृतिस्थ करने में असमर्थ है ।

मलयवती—(स्वगत) चतुरिका ने ताड़ तो लिया ही है । (प्रकट) सखी ! तू सचमुच चतुरिका है । अब तुझ से क्या छिपाऊँ । सुनो, कहती हूँ......

चतुरिका—राजकुम [illegible] वर [illegible] से प्रकट हुई
तुम्हारी [illegible] अब कहने
[illegible] मत

हो। यदि मैं सचमुच चतुरिका हूँ तो मैंने यह भी जान लिया है कि उसका भी आपके दर्शन बिना क्षण भर के लिये भी किसी और वस्तु में मन नहीं लगता।

मलयवती—(आँसू भरकर) चतुरिका ! भला, हमारे ऐसे भाग्य कहाँ ?

चतुरिका—राजकुमारी ! यह मत कहो। भला कहीं भगवान् मधुसूदन लक्ष्मी के बिना चैन से रह सकते हैं ?

मलयवती—सज्जन मीठा ही बोलना जानते हैं। सखी ! मुझे इस कारण और भी अधिक दुख हो रहा है कि मैंने उन महापुरुष का वाणी से भी सत्कार न किया। ऐसी अवस्था है वे मुझे मूर्ख समझते होंगे।

(यह कहकर रोती है)

चतुरिका—राजकुमारी ! रोओ मत । (स्वगत) अथवा क्यों न रोएगी ? इसकी मानसिक व्यथा इसे दुखी कर रही है तो अब क्या करूँ ? (प्रकट) यदि वह यहाँ आ जाय......

(जीमूतवाहन और विदूषक का प्रवेश)

जीमूतवाहन—(स्वगत) अहो कैसा अनुपम रूप है । रम्य मूर्त्ति हृदय-मन्दिर में रम गई है। क्योंकर वह प्राप्त हो ? क्या वह मेरे लिये उत्सुक होगी ! हाँ, अवश्य होगी, नहीं तो मुनि के

सामने भी घूमकर वह अपने श्याम नेत्रों से मुझे व
निहारती ।

विदूषक—(मित्र को विचार-शून्य देखकर) मित्र ! तुम्हारा धैर्य क
चला गया ?

जीमूतवाहन—(चौंककर) मित्र ! तुम भी विचित्र हो ! मेरा स्वप्न
कर दिया । दुर्लभ वस्तु की स्वप्न में भी प्राप्ति हो जाने प
हृदय शान्त होने लगता है ।

विदूषक—(स्वगत) इस प्रकार अपनी अधीरता को मानकर इसने
अपने हृदय की घोर व्यथा प्रकट कर दी है। अच्छा, तो किसी
और विषय पर इसका ध्यान बटाऊँ। (प्रकट) मित्र ! आज तुम
माता-पिता की सेवा शीघ्र ही समाप्त करके यहाँ कैसे आ
पहुँचे ?

जीमूतवाहन—मित्र ! तुम्हारा प्रश्न उचित है। तुम्हारे अतिरिक्त
और किसे यह बात बता सकता हूँ। मैंने आज स्वप्न में देखा
कि वही प्रियतमा (उँगली से संकेत करके) ... चन्दनलताग्
के अन्दर चन्द्रकान्तशिला पर बैठी हुई ... सी
है ... रो रही है। सो मैं ... उसी
... [illegible] ... आ,
वहाँ ...

चतुरिका—(कान लगाकर व्याकुलता से) राजकुमारी ! पैरों की आहट सी मालूम पड़ती है।

मलयवती—(शीघ्र अपनी ओर देखकर) सखी ! मुझे इस अवस्था में देखकर कोई मेरे मन की बात न भाँप ले। उठ, इस रक्त-अशोक की आड़ में होकर देखें कि कौन आ रहा है।

(रक्त अशोक की आड़ में होकर देखती हैं)

विदूषक—मित्र ! यह वह चन्दनलतागृह है। चलो अन्दर चलें।

(दोनों प्रवेश करते हैं)

जीमूतवाहन—जिस प्रकार चाँदनी के बिना प्रदीप अच्छा नहीं लगता, उसी तरह यह चन्दनलतागृह चन्द्रकान्तशिला के होने पर भी उस चन्द्रमुखी के बिना अच्छी नहीं लग रही।

चतुरिका—(जीमूतवाहन को देखकर जल्दी से) राजकुमारी ! तुम भाग्यवती हो, यह वही तुम्हारा प्रियतम है।

मलयवती—(आनन्दपूर्वक देखकर जल्दी से) सखी ! इसे देखकर मैं यहाँ अधिक निकट खड़ी नहीं रह सकती। कहीं ये मुझे देख न लें। इसलिये चलो, कहीं दूसरे स्थान पर चलें। (कुछ पग चलकर) मेरे पैर काँपते हैं।

चतुरिका—(हँसकर) अरी कातर ! यहाँ खड़ी रहने पर तुझे कौन देख सकता है ? बीच में रक्त-अशोक का वृक्ष है। यह त बिलकुल भूल गई है। सो यहीं बैठी रहें।

(बैठ जाती हैं)

विदूषक—(देखकर) मित्र ! यह वही चन्द्रमणिशिला है।

(जीमूतवाहन आँसू भरकर लम्बी साँस लेता है)

चतुरिका—ऐसा मालूम देता है कि किसी स्वप्न की कुछ बात-चीत चल रही है। इसलिये ध्यान से सुनें।

(दोनों सुनती हैं)

विदूषक—(हाथ से हिला कर) मित्र मैं कहता हूँ कि यह वही चन्द्रकान्तशिला है।

जीमूतवाहन—(आँसू भरकर और साँस लेकर) मित्र ! तूने ठीक पहचाना। (हाथ से संकेत करके) यह वही चन्द्रकान्तशिला है जहाँ पर मेरे आने में विलम्ब होने के कारण मैंने उसे लम्बे लम्बे साँस लेते हुए देखा था। वह अपने पीले दुबले मुँह को बाएँ हाथ पर रखकर रो रही थी। उसने अपने मन में क्रोध को रोका हुआ था फिर भी भौंहों के फड़कन से उसके हृदय का भाव स्पष्ट प्रतीत होता था। आओ, इसी चन्द्रकान्त-शिला पर बैठें।

मलयवती—(सोचकर) भला, वह कौन होगी ?

चतुरिका—राजकुमारी ! जैसे हम छिपकर इसको देख रही हैं, वैसे ही इन्होंने हमें भी कहीं देख न लिया हो।

मलयवती—हो सकता है। किन्तु यह प्रेम-कुपित स्त्री के विषय में बातचीत कर रहे हैं।

चतुरिका—राजकुमारी ! ऐसी शंका मत करो। फिर से सुन लेती हैं।

विदूषक—(स्वगत) यह इन बातों से प्रसन्न होता है। अच्छा, तो इसी प्रसङ्ग को आगे बढ़ाऊँ। (प्रकट) मित्र ! तब रोती हुई उस स्त्री को तुमने क्या कहा ?

जीमूतवाहन—मित्र ! मैंने उसे यह कहा कि "तुम्हारे आँसुओं से गीली यह चन्द्रकान्तशिला तुम्हारे इस मुखचन्द्र के उदय होने से पसीज रही जान पड़ती है।"

मलयवती—(क्रोध से) चतुरिका ! सुना ? अब इससे अधिक और क्या सुनना है ? (आँसू भरकर) तो चलो चलें।

चतुरिका—(हाथ पकड़कर) राजकुमारी ! ऐसा मत कहो। इन्होंने तुझे ही सुपने में देखा है। इनका हृदय और कहीं नहीं रीझा।

चतुरिका—(हँसकर) अरी न
देख सकता है ? बीच
बिलकुल भूल गई है। स

विदूषक—(देखकर) मित्र ! यह च

(जीमूतवाहन आँसू भरक

चतुरिका—ऐसा मालूम देता है कि
चीत चल रही है। इसलिये छ

विदूषक—(हाथ से हिला कर) मित्र
चन्द्रकान्तशिला है।

जीमूतवाहन—(आँसू भरकर और साँस ले
पहचाना। (हाथ से संकेत करके) व
है जहाँ पर मेरे आने में विलम्ब होने के
लम्बे साँस लेते हुए देखा था। वह अ
बाएँ हाथ पर रखकर रो रही थी। उस
को रोका हुआ था फिर भी भौंहों के प
का भाव स्पष्ट प्रतीत होता था। आओ,
शिला पर बैठें।

विदूषक—(रंग लिए पास जाकर) मित्र ! तुमने तो एक ही रंग कहा था, पर मैं यहाँ पहाड़ से पाँचों रंग ले आया हूँ। अब आप चित्र बनाइये।

जीमूतवाहन—मित्र ! अच्छा किया। (रंग लेकर शिला पर चित्र खींचता हुआ सहर्ष) मित्र ! देखो प्रसन्न प्रियतमा के मुँह की पहली झलक भी वैसे ही आनन्द दे रही है, जैसे सम्पूर्ण मण्डल से सुशोभित और आँखों को ठण्डक पहुँचाने वाले चन्द्रमा की पहली कला।

(पूर्ण चित्र खींचता है)

विदूषक—(विस्मय से देखकर) अहा ! उसके प्रत्यक्ष न होने पर भी ऐसा सुन्दर चित्र बना लिया है, बड़ा आश्चर्य है।

जीमूतवाहन—मित्र! संकल्प द्वारा तो प्रिया सामने ही है। उसी को देखकर मैं चित्र खींच रहा हूँ, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ?

मलयवती—(आँसू भरकर) चतुरिका ! सब बात सुन ही ली। अब चलो, आर्य मित्रावसु से मिल लें।

चतुरिका—(स्वगत) इसकी बातचीत से जीने के विषय में इसकी उदासीनता-सी प्रकट होती है। (प्रकट) राजकुमारी ! उनके

मलयवती—यह बात मेरा हृदय नहीं मानता। तो भी प्रसङ्ग की समाप्ति तक तो सुनें ही।

जीमूतवाहन—जी चाहता है कि इस शिला पर उसी का चित्र बना कर मन बहलाऊँ। अच्छा, मित्र! यहीं पहाड़ पर से मनसिल के टुकड़े उठा लाओ।

विदूषक—जो आपकी आज्ञा। (प्रस्थान)

जीमूतवाहन—(गाता है)

आज प्रेम-मय सब संसार

पर्वत के अन्तर से फूटी
सुरसरि बन उलफ़त की धार
आज प्रेम-मय सब संसार

आमों पर कोयल गाती है,
कली कली सिहरी जाती है,
फूली जंगल की छाती है,

लिए प्रेम सँगीत चला है
मलयाचल से मुग्ध बयार
आज प्रेम-मय सब संसार

प्रकृति परी इठलाती आई
अञ्चल में है जीवन लाई
मस्ती कण कण पर है छाई

हरिनों के बेसुध जोड़ों ने
झूम झूम कर माँगा प्यार
आज प्रेम-मय सब संसार

विदूषक—(रंग लिए पास जाकर) मित्र ! तुमने तो एक ही रंग कहा था, पर मैं यहाँ पहाड़ से पाँचों रंग ले आया हूँ। अब आप चित्र बनाइये।

जीमूतवाहन—मित्र ! अच्छा किया। (रंग लेकर शिला पर चित्र खींचता हुआ सहर्ष) मित्र ! देखो प्रसन्न प्रियतमा के मुँह की पहली झलक भी वैसे ही आनन्द दे रही है, जैसे सम्पूर्ण मण्डल से सुशोभित और आँखों को ठण्डक पहुँचाने वाले चन्द्रमा की पहली कला।

(पूर्ण चित्र खींचता है)

विदूषक—(विस्मय से देखकर) अहा ! उसके प्रत्यक्ष न होने पर भी ऐसा सुन्दर चित्र बना लिया है, बड़ा आश्चर्य है।

जीमूतवाहन—मित्र! संकल्प द्वारा तो प्रिया सामने ही है। उसी को देखकर मैं चित्र खींच रहा हूँ, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ?

मलयवती—(आँसू भरकर) चतुरिका ! सब बात सुन ही ली। अब चलो, आर्य मित्रावसु से मिल लें।

चतुरिका—(स्वगत) इसकी बातचीत से जीने के विषय में इसकी उदासीनता-सी प्रकट होती है। (प्रकट) राजकुमारी ! उनके

पास तो मनोहरिका गई हुई है, शायद आर्य मित्रावसु यहाँ ही आजाएँ।

(मित्रावसु का प्रवेश)

मित्रावसु—पिता ने मुझे आज्ञा दी है कि "बेटा मित्रावसु ! जीमूतवाहन से मलयवती का विवाह कर दो। पास रहने से हमने कुमार जीमूतवाहन को भली-भाँति परख लिया है।" परन्तु स्नेह के कारण मेरी तो कुछ और ही दशा हो रही है। जीमूतवाहन विद्याधर राजकुल में श्रेष्ठ है, बुद्धिमान् है, अच्छे लोगों से सम्मानित है, अत्यन्त सुन्दर है, पराक्रमी है, विद्वान् है, जितेन्द्रिय है, युवा है। परन्तु दया आने पर जीवरक्षा के लिये प्राण तक दे सकता है। इस कारण मुझे बहन ब्याहते हुए प्रसन्नता और दुख दोनों हो रहे हैं। मैंने सुना है कि जीमूतवाहन यहाँ ही गौरी-मन्दिर के पास चन्दनलतागृह में है। यह है चन्दनलतागृह; मैं प्रवेश करता हूँ।

(प्रवेश करता है)

विदूषक—(व्याकुलता से देखकर) मित्र ! केले के पत्ते से इस कन्या के चित्र को छिपा दो। सिद्धों का युवराज

मित्रावसु यहीं आ पहुँचा है। कहीं वह देख ले।

(जीमूतवाहन चित्र को केले के पत्ते से छिपाता है)

(मित्रावसु आकर प्रणाम करता है)

जीमूतवाहन—मित्रावसु ! स्वागत है। यहाँ बैठिये।

चतुरिका—राजकुमारी ! यह लो, आर्य मित्रावसु आगये।

मलयवती—सखी ! बहुत अच्छा हुआ।

जीमूतवाहन—मित्रावसु ! सिद्धराज विश्वावसु कुशल तो हैं न ?

मित्रावसु—पिता जी सकुशल हैं। उन्हीं का सन्देश लेकर आपके पास आया हूँ।

जीमूतवाहन—माननीय महाराज की क्या आज्ञा है ?

मलयवती—सुनूँ तो पिता जी ने क्या शुभ सन्देश भेजा है।

मित्रावसु—पिता जी ने कहा है कि मेरी एक कन्या मलयवती है, जो इस संपूर्ण सिद्धराजवंश को अत्यन्त प्रिय है। उसे मैं आपको देता हूँ। स्वीकार कीजिये।

चतुरिका—(हँसकर) राजकुमारी ! अब क्रोध क्यों नहीं करती ?

मलयवती—(मुस्कराकर लज्जा से मुँह नीचा कर लेती है) सखी ! मत हंस। क्या तू भूल गई है कि इसका मन और पर लगा है ?

(मलयवती होश में आती है)

मित्रावसु—(प्रकट) इस प्रकार हमारी प्रार्थना को ठुकराना कुमार को नहीं सुहाता।

मलयवती—(क्रोध से हँसकर) मना कर देने से तिरस्कृत होकर भी मित्रावसु बातचीत कर रहा है।

(मित्रावसु का प्रस्थान)

मलयवती—(आँसू भरकर अपनी ओर देखती हुई स्वगत) अब मेरे दुर्भाग्यरूपी कलङ्क से मलीन अत्यन्त दुखी, इस तुच्छ शरीर से क्या लाभ? तो यहीं इस रक्त-अशोक के वृक्ष पर मोतिये की शाखा से फाँसी लगाकर आत्महत्या कर लेती हूँ। अच्छा, तो ऐसा करूँ। (प्रकट। विस्मय सहित मुस्कराहट के साथ) चेटी! ज़रा देखना, मित्रावसु दूर निकल गया है या नहीं, ताकि मैं भी यहाँ से चलूँ।

चतुरिका—जो राजकुमारी की आज्ञा। (कुछ पग चलकर देखकर स्वगत) इसके मन में कुछ और ही दीखता है, तो मैं जाऊँ नहीं, यहीं छिपकर देखूँ कि यह क्या करती है?

मलयवती—(उठकर, चारों ओर देखती हुई पाश हाथ में लेकर आँसू भरकर) भगवती! आपने इस जन्म में तो कृपा

नहीं की किन्तु दूसरे जन्म में तो ऐसी कृपा करना जिससे मैं इस प्रकार दुख-पात्र न बनूँ।

(गले में फाँसी डालती है)

चतुरिका—(देखकर, व्याकुलता से पास जाकर) बचाओ, बचाओ। राजकुमारी फाँसी लगाकर मर रही हैं।

जीमूतवाहन—(देखकर सहर्ष) ओहो ! यह तो वही है जिस के लिये मेरा हृदय उतावला है । (मलयवती का हाथ पकड़कर पाश छीन लेता है।) (मलयवती को) ऐ भोली! ऐसा साहस मत करो। पत्ते के समान कोमल इस हाथ को लता से हटा लो । मैं नहीं समझ सकता कि यह हाथ जो फूल चुनने में भी कष्ट अनुभव करता है वह फाँसी लगाने के लिये पाश को कैसे पकड़े हुए है ?

मलयवती—(भयभीत होकर) सखी ! यह कौन है ? (जीमूतवाहन को देखकर क्रोध से हाथ छुड़ाना चाहती है) छोड़ो, छोड़ो, मेरा हाथ ! तुम रोकने वाले कौन हो ? क्या मरने समय भी तुम्हारी ही आज्ञा लेनी होगी ?

जीमूतवाहन—मैं नहीं छोड़ूँगा। हार-लता के योग्य तुम्हारे गले में जिसने पाश डाल दिया है वह अपराधी हाथ पकड़ लिया गया है, अब उसे कैसे छोड़ा जाय ?

विदूषक—(चतुरिका से) अच्छा, तो इसके मरने का निश्चय क्योंकर हुआ ?

चतुरिका—(ताना मारते हुए) इसी तुम्हारे प्रिय मित्र के कारण।

जीमूतवाहन—(शोक से) क्या मैं ही इसके मरने का कारण हूँ। मैं तो कुछ नहीं समझा, कैसे ?

विदूषक—भद्रे ! यह कैसे ?

चतुरिका—वह जो तुम्हारे प्रिय मित्र ने अपनी किसी प्रियतमा का चित्र खींचा है, उसमें अनुरक्त होने के कारण, मित्रावसु के कहने पर भी, इसे स्वीकार नहीं किया। इसलिये इसने विरक्त होकर ऐसा निश्चय किया है।

जीमूतवाहन—(सहर्ष, स्वगत) अच्छा, यही विश्वावसु की कन्या मलयवती है। अथवा ठीक है, समुद्र के बिना चन्द्रकला कहाँ उत्पन्न हो सकती है ? शोक है, मैंने कुछ धोखा खाया।

विदूषक—भद्रे ! यदि यही बात है तो अब मेरा प्रिय मित्र सर्वथा निर्दोष है। यदि विश्वास न हो तो आप स्वयं चलकर चित्र देख लीजिये।

तीसरा अंक

ान—मलयपर्वत पर कुसुमाकर उद्यान के समीप

विचित्र वस्त्र पहने मद-मत्त विट का मदिरापात्र लिए

चेट सहित प्रवेश)

(मद से उन्मत्त होकर लड़खड़ाता हुआ) अरे ! मुझे कौन हिला रहा है ? (सहर्ष) अवश्य नवमालिका मेरे साथ हँसी कर रही है ।

स्वामी ! नवमालिका तो अभी तक आई ही नहीं ।

(सक्रोध) पहले ही पहर में मलयवती का विवाहोत्सव समाप्त हो चुका है, तो वह अब तक, प्रातःकाल हो जाने पर भी, क्यों नहीं आई ? (सोचकर हर्ष से) अथवा उसी मलयवती के विवाहोत्सव में सभी सिद्ध विद्याधर लोग अपनी अपनी स्त्रियों के साथ कुसुमाकर उद्यान में आनन्द ले रहे होंगे, तो अवश्य नवमालिका भी वहीं मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी । वहाँ ही चलूँ ? नवमालिका के बिना शेखरक कैसा ?

(लड़खड़ाता हुआ घूमता है)

है कि जीमूतवाहन के माता-पिता ने तुम्हें वधू-रूप में स्वीकार कर लिया है।

विदूषक—(नाचकर) अहा हा ! प्रिय मित्र का मनोरथ पूरा हो गया। अथवा, इन राजकुमारी का। अथवा दोनों का ही नहीं। (भोजन का अभिनय करके) केवल मुझ ब्राह्मण का ही मनोरथ पूरा हो गया।

दासी--(मलयवती से) युवराज मित्रावसु ने मुझे आज्ञा दी है कि "आज ही मलयवती का विवाह होगा, सो जल्दी उसे बुलाकर ले आ।" आओ चलें।

विदूषक—अरी दासीपुत्री ! तुम इसे लेकर चल दीं। क्या यह मेरा प्रिय मित्र यहाँ ही पड़ा रहेगा ?

चतुरिका—दुष्ट ! अधीर मत हो (जीमूतवाहन को) आपके स्नान आदि का सामान भी आरहा है।

(लज्जा और प्रेम से जीमूतवाहन को देखती हुई परिवार सहित मलयवती का प्रस्थान)

(नेपथ्य में वैतालिक गाता है)

आज नाचता है उल्लास

दूर दूर जंगल में, बन में, इस कुटिया में अपने पास।

चलता है मद-मत्त समीर

साथ लिए भ्रमरों की भीर

झूम रहा है लाल अबीर

मलयाचल, बन स्वर्णाचल, है आज बना सुषमा का दास।
आज नाचता है उल्लास

(दासी का प्रवेश)

दासी—महाराज ! स्नान का सामान आ गया है आपकी प्रतीक्षा
हो रही है, इसलिये जल्दी चलें।

विदूषक—(सुनकर) मित्र ! हर्ष की बात है स्नान के लिये
सब सामान आगया। (दासी की ओर संकेत कर) दासी
तुम चलो । हम अभी आते हैं।

(दासी का प्रस्थान)

जीमूतवाहन—(सहर्ष) यदि ऐसी बात है तो अब यहां ठहर
कर क्या करेंगे ? आओ, पिताजी को प्रणाम करें
स्नानागार को चलें।

[दोनों का प्रस्थान]

पटाक्षेप

इसके पास जाकर इसे प्रसन्न करूँ।

(विदूषक को गले लगाता है)

विदूषक--(मद्य की दुर्गन्ध के कारण नाक दबाकर मुँह मोड़ लेता है) मैं एक तरफ तो बड़ी कठिनाई से मधुकरों के मुँह से छूटा, अब दूसरी तरफ़ दुष्ट मधुकर के चंगुल में फँस गया हूँ।

विट--क्या क्रोध से मुँह मोड़ लिया ? (विदूषक के पाँओं में अपना सिर रखकर) मान जा, नवमालिका ! मान जा।

(नवमालिका का प्रवेश)

नवमालिका—राजकुमारी की माता ने मुझे आज्ञा दी है कि "नवमालिका कुसुमाकर उद्यान की मालिन पल्लविका से जाकर कह दो कि आज तमाल-कुञ्ज को विशेपरूप से सजा रक्खे। मलयवती के साथ जमाई वहाँ जायेंगे।" इसलिये मैंने पल्लविका से कह दिया। तो अब अपने प्रिय शेखरक को ढूँढ़ूँ। (देखकर) यह रहा शेखरक ! (क्रोध से) हूँ ! किसी और स्त्री को मना रहा है। तो यहीं ठहरकर पहचानूँ कि यह कौन है।

विट—जो अभिमान के कारण ब्रह्मा, विष्णु, शिव को भी प्रणाम नहीं करता वही शेखरक नवमालिका ! तुम्हारे पाँवों में पड़ रहा है। (विदूषक के पाँवों पर पड़ता है)

हुआ जल फूलों से टकराकर, उनके पराग से पीला होकर वृक्षों के थाँवलों को भर रहा है। और इनके पुष्प-पराग की सुगन्धि आ रही है। भौंरों ने अपनी गूँज से लता-मण्डप को गुँजायमान कर दिया है, यहाँ चारों ओर अपनी संगिनी भ्रमरियों के साथ मधुपान करते हुए भौंरे पानगोष्ठी का आनन्द ले रहे हैं।

विदूषक—(पास जाकर) आपकी जय हो ! देवी का कल्याण हो !

जीमूतवाहन—मित्र ! बड़ी देर में दिखाई दिये।

विदूषक—भाई ! मैं तो बहुत जल्दी ही आ गया था किन्तु इतनी देर आपके विवाहोत्सव में सिद्ध और विद्याधरों की पानगोष्ठी देखने की इच्छा से घूमता रहा। चलिये आप भी यह उत्सव देखिये।

जीमूतवाहन—जैसे आपकी इच्छा। (हर्ष से चारों ओर देखकर) अहह ! विद्याधर सिद्ध-गणों के साथ मिलकर, चन्दन-वृक्षों की छाया में प्रियतमाओं समेत, उत्सव मना रहे हैं। अंगों पर हरिचन्दन लगा है और सन्तानपुष्पों की मालाएँ धारण करके मणि-जटित आभूषणों की छटा से विचित्र वेष-भूषा वाले हो रहे हैं। तो चलो हम भी

तमालकुञ्ज में टहलें। (सभी चलते हैं)

विदूषक—यह तमालकुञ्ज है और यह लतामण्डप है। यहाँ घूमने से बहूरानी थक गई दीखती हैं। इसलिये यहाँ ही स्फटिक मणिशिला पर बैठकर विश्राम कीजिए।

जीमूतवाहन—मित्र! तुमने ठीक जाँचा। इनका मुख, अपनी शोभा से चन्द्रमा को जीतकर, अब धूप के ताप से लाल होकर कमल को जीतना चाहता है। (मलयवती को हाथ से पकड़ कर) प्रिये! यहाँ बैठते हैं।

मलयवती—जैसे आपकी आज्ञा।

(सब बैठ जाते हैं)

जीमूतवाहन—(मलयवती की ओर देखकर)

हमने कुसुमाकर उद्यान को देखने के लिये व्यर्थ ही तुम्हें कष्ट दिया। भ्रूलता से सुशोभित तथा गुलाबी होठों पत्तों से मनोहर यह तुम्हारा मुख ही स्वर्ग का नन्दन वन है। इसके अतिरिक्त और उद्यान तो केवल नाम ही हैं।

चतुरिका—(मुस्कराकर, विदूषक से) तुमने सुना कि राजकुमार इनका कैसा वर्णन किया है। आज मैं तुम्हारा कहूँगी।

विदूषक—(प्रसन्न होकर) मैं धन्य हूँ। हाँ, आप अवश्य ऐसी कृपा करिये जिससे कि मुझे फिर कोई यह न कह सके कि यह लाल बन्दर जैसा है।

चतुरिका—आर्य! आज मैंने तुम्हें विवाह के समय जागने के कारण ऊँघता हुआ आँखे बन्द किये देखा था। तब आप बहुत सुन्दर लगते थे। सो वैसे ही आप ज़रा बैठ जाएँ।

(विदूषक वैसे ही करता है)

चतुरिका—(स्वगत) जब तक यह आँखे बन्द किये बैठा है तब तक नील रस के समान तमाल के रस से इसका मुँह काला कर दूँ। (उठकर तमाल के पत्तों को निचोड़कर विदूषक का मुँह काला कर देती है। जीमूतवाहन और मलयवती दोनों विदूषक के मुँह की ओर देखते हैं)

जीमूतवाहन—मित्र! तुम धन्य हो, जो हमारे सामने तुम्हारा इस प्रकार वर्णन किया जा रहा है।

(मलयवती जीमूतवाहन की ओर देखकर हँसती है)

जीमूतवाहन—(मलयवती की ओर देखकर) प्रिये! यह स्मित-रूपी फूल तो तुम्हारे होठों की कोंपल पर खिला दिखाई देता है, पर इसका फल मुझे देखती हुई

मेरी इन आँखों में उत्पन्न हो गया है। मेरा अहो
भाग्य है।

विदूषक—भद्रे ! यह तुमने क्या किया ?

चतुरिका—तुझे वर्णित किया है।

विदूषक—(हाथ से मुँह पोंछकर, हाथ को देखकर क्रोध से डंडा
उठाकर) अरी नीच ! यह राजकुल है। मैं तो
क्या करूँ ? (जीमूतवाहन की ओर संकेत करके) यह
आपके सामने ही इस दासी-पुत्री ने मेरा अपमान किया
है, सो मेरे यहाँ ठहरने से क्या लाभ ? और कहीं
जाता हूँ।

(प्रस्थान)

चतुरिका—आर्य आत्रेय मेरे से रुष्ट हो गए ? जाकर
मनाती हूँ।

मलयवती—सखी चतुरिका ! मुझे अकेली छोड़कर क्यों जा
रही हो ?

चतुरिका—(जीमूतवाहन की ओर संकेत करके मुस्कराकर) इस
प्रकार तुम सदा ही अकेली रहो।

(प्रस्थान)

जीमूतवाहन—प्रिये ! यह कैसा आनन्दमय अवसर है। सूर्य की
किरणें पड़ने से यह कमल जाल में दिखाई देते हैं

मन्द मन्द वायु के चलने से वृक्ष पत्ररूपी पंखा हिला रहे हैं, और तुम्हारे मुख पर ग्रीष्मकाल-सुलभ स्वेद-बिन्दु भी अब दिखाई नहीं देते।

(मलयवती हँसकर मुँह फेर लेती है)

चतुरिका--(जल्दी से पास जाकर) सिद्ध युवराज मित्रावसु किसी काम से कुमार को मिलने आए हैं।

जीमूतवाहन—प्रिये ! अब तुम अपने घर जाओ। मैं भी मित्रावसु को मिलकर जल्दी-से-जल्दी आता हूँ।

(मलयवती का चतुरिका के साथ प्रस्थान)

(मित्रावसु का प्रवेश)

मित्रावसु—बिना शत्रु का वध किए मैं जीमूतवाहन से कैसे कहूँ कि तुम्हारा राज्य शत्रु ने छीन लिया है। मैं शक्तिमान हूँ और नीच शत्रु का नाश किए बिना मेरे लिये यह सन्देश देना लज्जा का स्थान है। तो भी, बिना कहकर जाना ठीक नहीं, तो कहकर ही जाऊँ।

(पास जाकर) कुमार ! मित्रावसु प्रणाम करता है।

जीमूतवाहन--(देखकर) मित्रावसु ! यहाँ बैठो।

(मित्रावसु बैठ जाता है)

जीमूतवाहन—(देखकर) कुछ व्याकुल से दिखाई देते हो।

मित्रावसु—भला नीच मतङ्ग से क्या घबराना ?

जीमूतवाहन – क्यों, मतङ्ग ने क्या किया ?

मित्रावसु--उसने अपना नाश कराने के लिये आपके राज्य प

आक्रमण कर दिया है ।

जीमूतवाहन--(प्रसन्न होकर स्वगत) क्या यह बात सत्

होगी ?

मित्रावसु--आप मुझे उसके नाश करने के लिये आज्ञा दीजिए । अधिक क्या, ज्यों ही ये सिद्ध लोग आपकी आज्ञा पाकर अपने विमानों द्वारा सारे आकाशमार्ग में दौड़ेंगे और सूर्य की किरणों को रोककर, दिन में वर्षाकाल की भाँति अन्धकार बनाते हुए लड़ेंगे त्यों ही आप का राज्य शत्रु से मुक्त हो जायगा । गर्वित शत्रु से भयभीत राजाओं का समूह भी आपके आगे नत-मस्तक होगा । अथवा सेना की भी क्या आवश्यकता है ? मैं अकेला ही अपनी तेज तलवार से युद्ध में दुष्ट मतंग को मार दूँगा जैसे सिंह दूर से झपट कर हाथी को मार देता है ।

जीमूतवाहन--(कानों पर हाथ रखकर स्वगत) अहह ! कैसी क्रूरता की बात कही । अच्छा ऐसे कहूँ ! (प्रकट) मित्रावसु ! यह क्या है ? आप जैसे बलवान् पुरुष दूसरे को बढ़-चढ़ कर दिखा सकते हैं । किन्तु मैं तो

दूसरों के लिये, बिना माँगे ही, दया से अपना शरीर भी अर्पण कर सकता हूँ सो मैं भला कैसे राज्य के लिये लोगों के मारने की आज्ञा दे दूँ ? और यह बात भी है कि विषयों के अतिरिक्त अन्य किसी से भी मेरा शत्रुभाव नहीं है। यदि तुम्हारी इच्छा मुझे प्रसन्न करने की है तो उस बेचारे पर दया करो। वह बेचारा तो पहले ही राग-द्वेष आदि के वश में है।

मित्रावसु—(क्रोध से हँसकर) दया क्योंकर नहीं करें ? ठीक वह तो हमारा बड़ा उपकारी ही है।

जीमूतवाहन—(स्वगत) नए क्रोध से इसका मन क्षुब्ध है। इसलिये इसे अब समझाना कठिन है। तो ऐसा करूँ। (प्रकट) मित्रावसु! उठो, अब तो दिन ढल गया है। भीतर चलें। वहाँ चलकर तुम्हें समझाऊँगा।

पर-हित कर कुछ कार

प्यारे

पर-हित जीना पर-हित मरना

पर-हित ही भव-सागर तरना

ढोना जीवन-भार

प्यारे

सुनन्द—आर्य ! राजकुमारी के पास ही जाना ठीक है। कदाचि[त्]
इस समय तक जमाई वहाँ लौट आए होंगे।

वसुभद्र—सुनन्द ! ठीक है। भला तुम कहाँ जा रहे हो ?

सुनन्द—मुझे भी महाराज विश्वावसु ने आज्ञा दी है कि
"सुनन्द जाओ—मित्रावसु से कहो कि आकर इ[स]
दीपप्रतिपदा के उत्सव पर मलयवती और जमाई को इ[स]
उत्सव के योग्य उपहार का निश्चय कर लेवें।" [अतः]
आप राजकुमारी के पास जाएँ और मैं मित्रावसु [को]
बुलाने जाता हूँ।

[दोनों का प्रस्थान]

(जीमूतवाहन और मित्रावसु का प्रवेश)

जीमूतवाहन—हरी-हरी दूब बिछौना है। बैठने के लिये स्व[च्छ]
शिला है। रहने के लिये वृक्षों की छाया है। पीने के
लिये झरने का शीतल जल है। खाने के लिये कन्द[-मूल]
हैं और साथी मृग हैं। इस प्रकार बिना माँगे सब
सम्पत्ति मिल जाने पर भी वन में यह दुख है कि [यहाँ]
याचक नहीं मिलते। इसलिये परोपकार के अव[सर]
न मिलने से जीवन वृथा ही व्यतीत कर[ना]
पड़ता है।

मित्रावसु—(देखकर) कुमार ! जल्दी करो, जल्दी करो। समुद्र के ज्वार-भाटे का समय हो रहा है।

जीमूतवाहन—(कान देकर) आपने ठीक पहचाना। कैसा कर्णभेदी शब्द है ! गजंते हुए बड़े-बड़े जल-हस्तियों की टक्करों से ध्वनि निरन्तर तेज़ हो रही है। इससे पर्वत की कन्दराएँ गूँज उठी हैं। प्रतीत होता है कि शंखों को इधर-उधर फेंकती हुई समुद्र की ज्वार आने वाली है।

मित्रावसु—कुमार ! लो, ज्वार आ ही गई। देखिए, हाथी और मगरमच्छों द्वारा खाए हुए लौंग के पत्तों की डकारों से ज्वार कैसी सुगन्धित है। अनेक रत्नों की ज्योति से चमकती हुई यह कैसी सुन्दर दीखती है। आओ, पास चलकर देखें।

(घूमते हैं)

जीमूतवाहन—(आस-पास देखकर) मित्रावसु ! देखिए, शरद ऋतु के शुभ्र मेघों से घिरे हुए ये मलयपर्वत के शिखर हिमालय की चोटियों के समान सुन्दर मालूम पड़ते हैं।

मित्रावसु—कुमार ! यह मलयपर्वत की चोटियाँ नहीं हैं किन्तु नागों के अस्थियों का ढेर है।

जीमूतवाहन—(उद्वेग से) बड़े दुख की बात है। भला

किस कारण ढेरों के ढेर नागों की मृत्यु एकसंग हो गई ?

मित्रावसु—कुमार ! ढेरों के ढेर एकसंग नहीं मारे गये।

जीमूतवाहन—और कैसे ?

मित्रावसु—कुमार ! पहले किसी समय का प्रसंग है। गरुड़ अपने पंखों की वायु से समुद्र के जल को मथ देता था और बड़े वेगपूर्वक पाताल में से नागों को निकालकर प्रतिदिन खाया करता था।

जीमूतवाहन—(शोक से) ओहो ! बहुत बुरा करता था। फिर ?

मित्रावसु—तो सब नागों के नाश की शंका करते हुए वासुकी ने गरुड़ से कहा.........

जीमूतवाहन—(सादर) कि मुझे पहले खा ले।

मित्रावसु—नहीं, नहीं।

जीमूतवाहन—तो क्या कहा ?

मित्रावसु—यह कहा कि तुम्हारी झपट के डर से नागिनियाँ काँप उठती हैं और उनके गर्भ गिर जाते हैं। छोटे-छोटे नाग तुम्हें देखते ही प्राण छोड़ देते हैं। इसका परिणाम यह होगा कि हमारी सन्तति के नाश के साथ तुम्हारी भी नष्ट हो जायेगा। सो, यदि स्वीकार

करो तो मैं स्वयं ही समुद्र के तट पर तुम्हारे लिये एक-एक नाग प्रतिदिन भेज दिया करूँगा।

जीमूतवाहन—वासुकी ने नागों की खूब रक्षा की! दो हज़ार जिह्वाओं में से उसकी एक भी ऐसी जिह्वा न थी जिससे वह कह देता कि मैंने आज एक नाग की रक्षा के लिये गरुड़ को आत्म-समर्पण किया। तो फिर?

मित्रावसु—गरुड़ ने भी इस शर्त को मान लिया। इस प्रकार वासुकी के साथ प्रबन्ध करके प्रतिदिन जिस नाग को गरुड़ खाया करता है ये हिम से आच्छादित पर्वतों के समान सफ़ेद उन्हीं की हड्डियों के ढेर हैं। ये भूत भविष्यत् और वर्तमान काल में दिनों दिन बढ़ते गये हैं, बढ़ते जाते हैं और बढ़ते जाएँगे।

जीमूतवाहन—आश्चर्य! महान् आश्चर्य! सब तरह की अपवित्रताओं के वास-स्थान, कृतघ्न और नश्वर इस शरीर के लिये भी मूर्ख लोग पाप करते हैं। हाय! नागों की इस आपत्ति का कोई अन्त नहीं। (स्वगत) क्या मैं अपने शरीर द्वारा एक नाग के प्राणों की रक्षा नहीं कर सकता?

(सुनन्द का प्रवेश)

सुनन्द—मैं पर्वत की चोटी पर चढ़ आया हूँ, तो मित्रावसु

को ढूँढूँ । (देखकर) अरे ! मित्रावसु जमाई के पास बैठे हैं । तो पास जाता हूँ । (पास जाकर प्रणाम करके) कुमारों की विजय हो !

मित्रावसु—सुनन्द ! यहाँ कैसे आना हुआ ?

(सुनन्द कान में कहता है)

मित्रावसु—कुमार ! पिता जी मुझे बुला रहे हैं ।

जीमूतवाहन—जाओ ।

मित्रावसु—आप भी कुतूहलवश इस भयानक स्थान पर बहुत देर न ठहरें ।

(मित्रावसु और सुनन्द का प्रस्थान)

जीमूतवाहन—तो मैं भी पहाड़ के शिखर से उतरकर समुद्र-तट का दृश्य देखूँ । (घूमता है)

(नेपथ्य में)

हा पुत्र शंखचूड़ ! मैं आज तुझे मरता कैसे देखूँगी ?

जीमूतवाहन—(सुनकर) अरे ! यह आर्त-विलाप तो किसी स्त्री का-सा प्रतीत होता है । पास जाकर पता लगाता हूँ कि यह कौन है और इसे किसका डर है ?

(घूमता है)

(शंखचूड़ और लाल कपड़ों के जोड़े को छिपाए हुए राजसेवक और उनके पीछे रोती हुई एक बुढ़िया का प्रवेश)

वृद्धा—हा पुत्र शंखचूड़ ! मैं आज तुम्हारा वध कैसे
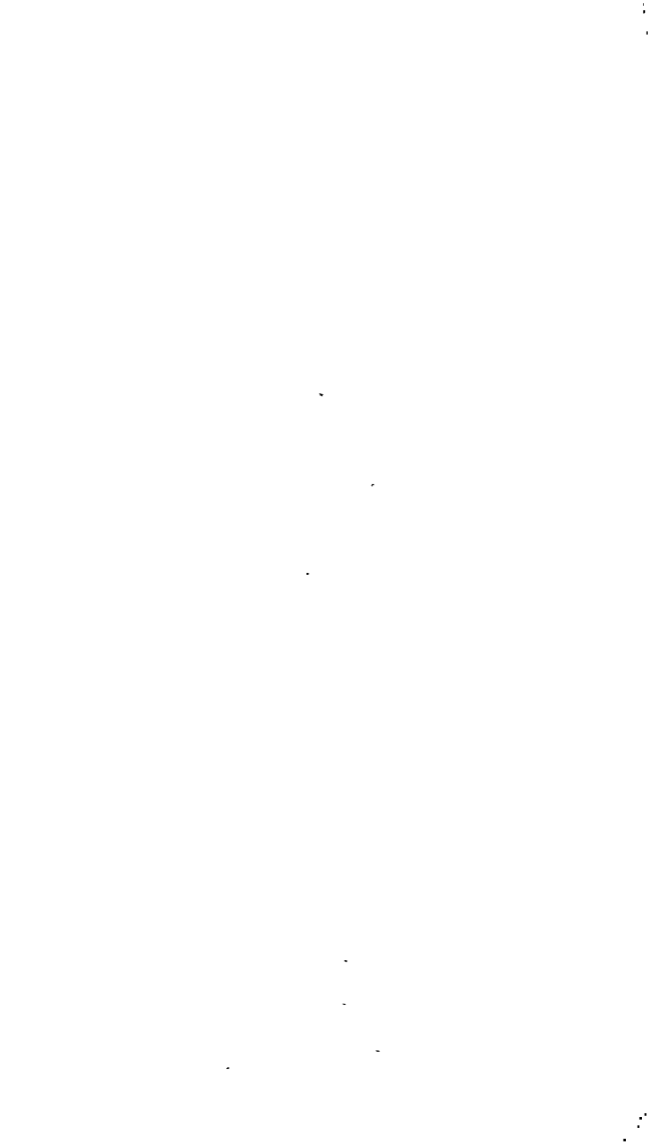
राजसेवक— (स्वगत) शंखचूड़ को तो मैं वध्यशिला के पास ले ही आया हूँ । तो मृत्यु के लाल कपड़े इसे देदूँ ।

जीमूतवाहन— अरे ! यह वही स्त्री है । (शंखचूड़ को देखकर) और यही इसका लड़का होगा । तो भी रोती क्यों है ! (चारों तरफ देखकर) इसके भय का कारण तो कोई दीखता नहीं । तो इसे किसका डर है, क्या मैं इसके पास जाकर पूछूँ ? अथवा बातचीत तो चल ही रही है । कदाचित् इसी से पता चल जाय—तो वृक्ष की ओट में होकर सुनूँ ।

राजसेवक—(आँसू भरकर हाथ जोड़कर) कुमार शंखचूड़ ! यह स्वामी की आज्ञा है, इसलिये ऐसी कठोर बात कहता हूँ ।

शंखचूड़—भद्र ! निःसङ्कोच कहो ।

राजसेवक—नागराज वासुकी आज्ञा देते हैं………

शंखचूड़—(हाथ जोड़कर आदर से) नागराज मुझे क्या आज्ञा देते हैं ?

राजसेवक—यह लाल जोड़ा पहन कर वध्यशिला पर चढ़ जाओ । इन कपड़ों से पहचानकर गरुड़ तुम्हें अपना खाने के लिये ले जायगा ।

वृद्धा—(झटपट दुपट्टे से बच्चे को छिपाकर जीमूतवाहन के पास जाकर घुटने के बल बैठकर) गरुड़ ! विनता के सुपुत्र ! मुझे मार। मैं तेरे खाने के लिये भेजी गई हूँ।

जीमूतवाहन—(आँसू भरकर) धन्य है पुत्र-स्नेह ! मेरी समझ में तो इसके पुत्र-स्नेह के कारण इसकी यह विकलता देखकर नाग-भक्षक निर्दय गरुड़ भी इस पर दया दिखाएगा।

शंखचूड़—माता ! डर मत । यह नागों का शत्रु गरुड़ नहीं। देख तो, बड़े बड़े नागों के सिर फाड़ने से निकली हुई रक्त की धारा से सनी हुई भयानक चोंच वाला कहाँ वह गरुड़ ! और कहाँ यह चाँद के समान सौम्य-स्वभाव और आकृति वाला भद्र महापुरुष !

वृद्धा—मुझे तेरी मृत्यु के डर से सब कुछ गरुड़मय ही दीख रहा है।

जीमूतवाहन—माता ! डरो मत। मैं विद्याधर हूँ और तेरे पुत्र की रक्षा के लिये ही आया हूँ।

वृद्धा—(सहर्ष) पुत्र ! बार-बार ऐसे कहो।

जीमूतवाहन—माता ! बार-बार कहने से क्या ? करके ही दिखाता हूँ।

खाते हुए गरुड़ की चोंच ही नहीं हृदय भी पत्थर का बना है, ऐसा समझता हूँ।

शंखचूड़—(अपने आँसू पोंछकर) माता ! बस, बस। घबराने से क्या लाभ ? धीरज धरो, धीरज धरो।

वृद्धा—(आँसू भरकर) पुत्र ! कैसे धीरज धरूँ ? क्या इकलौता बेटा होने के कारण नागराज ने दया करके वापस लौटा दिया है। हा ! क्या इतने बड़े संसार में से मेरा बेटा ही स्मरण आया ? मुझ अभागिनी का तो सर्वनाश हो गया !

(मूर्च्छित हो जाती है)

जीमूतवाहन—(करुणा से) सब बन्धुजनों ने इसे छोड़ दिया है। मृत्यु इस पर ताण्डव नृत्य कर रही है। इसे यदि मैं अपने प्राणों से न बचाऊँ तो मेरे जीवन से क्या लाभ ? अच्छा, इसके पास पहुँचता हूँ।

शंखचूड़—माता ! अपने आपको सँभालो।

वृद्धा—हा पुत्र शंखचूड़ ! सँभालना असम्भव है। जब सर्व नागलोक के रक्षक वासुकी ने मुझे छोड़ दिया तो और कौन मेरी रक्षा करेगा ?

जीमूतवाहन—(पास आकर) माँ, मैं रक्षा करता हूँ।

वृद्धा—(हाथ जोड़कर) पुत्र ! चिरञ्जीव रहो ।

जीमूतवाहन—माता ! यह मृत्यु का चिह्न मुझे दे दो । इसे पहन कर मैं तेरे पुत्र की रक्षा के लिये अपने आपको गरुड़ के आगे समर्पण कर दूँ ।

वृद्धा—(कानों पर हाथ रखकर) यह नहीं हो सकता । तू भी तो शंखचूड़ के समान ही बच्चा है । किन्तु शंखचूड़ से बढ़ कर, जोकि बन्धुओं से छोड़े हुए मेरे पुत्र को अपना शरीर देकर बचाना चाहता है ।

शंखचूड़—(मुस्कराकर) वाह ! इस महापुरुष का चरित्र संसार से भिन्न है । जिन प्राणों के लिये विश्वामित्र ने [illegible] के समान कुत्ते का मांस खा लिया, गौतम ने [illegible] वाले नाडीजङ्घ नक को मार दिया, [illegible] नित्य नागों को खाता है, आश्चर्य है [illegible] को यह दयालु दूसरों के [illegible] भांति त्याग रहा है । (जीमूतवाहन की ओर [illegible]) हे महात्मन् ! आपने [illegible] देने के निश्चय से [illegible] है । अब अधिक [illegible] मुझ जैसे पापी [illegible] आप जैसे परोपकारियों

का होना कठिन है। अब हठ से क्या लाभ ? इस आग्रह को छोड़ दीजिये।

जीमूतवाहन—कुमार शंखचूड़ ! परोपकार करने का अवसर मुझे बहुत दिनों के पश्चात् मिला है, इसलिये इसमें तुम बाधा मत डालो और आग्रह को छोड़कर यह वध्य-चिह्न मुझे दे दो।

शंखचूड़—हे महापुरुष ! इस वृथा क्लेश से क्या लाभ ? यह शंखचूड़ शंख की भाँति सफ़ेद शंखपाल-कुल को कलङ्कित नहीं करेगा। यदि आपने मेरे ऊपर कृपा करनी है तो ऐसा उपाय निकालिये जिससे मेरे पीछे मेरी दुखी माता प्राण न छोड़ दे।

जीमूतवाहन—इसमें सोचना क्या है ?

शंखचूड़—क्यों ?

जीमूतवाहन—आपके मर जाने से यह मरेगी और आपके जीने से यह जीयेगी। इसलिये यदि इसे जीवित रखना चाहते हो तो मेरे प्राणों से अपनी रक्षा करो। यही उपाय है। झटपट मुझे वध्य-चिह्न दे दो ताकि मैं उसे पहनकर वध्य-शिला पर चढ़ जाऊँ। तुम भी माता को साथ लेकर यहाँ से जाओ। ऐसा न हो कहीं माता

जिस-जिस योनि में भी उत्पन्न होऊँ उस-उस योनि में हे माता! तुम ही मेरी माता बनना।

(पैरों पर गिरता है)

वृद्धा—(रोकर) पुत्र! क्या यह तेरे अन्तिम शब्द हैं? तुझे छोड़कर मेरे पाँव दूसरी ओर उठते ही नहीं। इसलिये मैं तो यहीं तेरे साथ ही रहूँगी।

शंखचूड़—अच्छा तो मैं भी पास ही में भगवान् दक्षिण-गोकर्ण की प्रदक्षिणा करके अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करूँ।

(दोनों का प्रस्थान)

जीमूतवाहन—शोक! मेरा मनोरथ सफल न हुआ। अब क्या उपाय हो सकता है?

(सहसा वसुभद्र का प्रवेश)

वसुभद्र—यह रहा कपड़ों का जोड़ा।

जीमूतवाहन—(देखकर प्रसन्नता के साथ स्वगत) अहोभाग्य! अकस्मात् आए हुए इस लाल कपड़े के जोड़े से मेरी अभिलाषा पूर्ण हो गई।

वसुभद्र—मित्रावसु की माता ने यह दो कपड़े आपके लिये भेजे हैं। आप इन्हें पहन लीजिये।

जीमूतवाहन—लाओ।

(वसुभद्र देता है)

जीमूतवाहन—(लेकर स्वगत) मेरा मलयवती से विवाह करना सफल हो गया। (पहनकर प्रकट) कञ्चुकी! जाओ मेरी ओर से माता जी को प्रणाम कहना।

वसुभद्र—जो आज्ञा।

(प्रस्थान)

जीमूतवाहन—यह दो लाल कपड़े ठीक अवसर पर आए हैं। इनसे दूसरे के लिये देह त्याग करते हुए मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है। (चारों ओर देखकर) बड़ी हवा चल रही है! इससे मलयाचल की चट्टानें काँपने लग गई हैं। मेरा विचार है कि गरुड़ कहीं पास ही आ पहुँचा है। प्रलयकाल के मेघों के समान पंखों की पंक्तियाँ आकाश को ढक रही हैं। वेगयुक्त वायु मानों पृथ्वी को डुबोने के लिये समुद्र के जल को किनारे पर उछाल रही है। बड़े-बड़े हाथी भी भयभीत हुए उनकी ओर देख रहे हैं। बारह सूर्यों के समान चमकने वाला गरुड़ अपने शरीर की प्रभा से चारों दिशाएँ प्रदीप्त कर रहा है।

([illegible] जीमूतवाहन के आने से पहले ही वध-शिला पर

चढ़ जाता हूँ। (चढ़कर स्पर्शसुख प्रकट करता है) अहा ! इसका क्या ही रमणीय स्पर्श है ! मलयज वायु के स्पर्श से इतना आनन्द नहीं मिलता जितना कि अभीष्ट सिद्धि के लिये वध्य-शिला का स्पर्श दे रहा है। अथवा बचपन में माता की गोद में निश्चिन्त लेटने पर भी वह सुख नहीं मिला था जो इस वध्य-शिला पर बैठने से मिला है। अहह ! गरुड़ आ ही गया है, इसलिये मैं अपने आप को ढक लूँ।

(ढक लेता है)

(गरुड़ का प्रवेश)

गरुड़—मैंने चन्द्रमण्डल को एक ओर फेंक दिया। मेरे भय के कारण कुण्डल मारे हुए शेषनाग की मूर्ति का मुझे अभी तक स्मरण है। मुझे देखकर रथ के घोड़ों के ठिठक जाने से सूर्य के डोलायमान होने पर मेरे बड़े भाई अरुण ने मुझे देखा था। किनारों पर जमे हुए बादलों के कारण मेरे पंख अधिक बढ़ गये हैं। नागों को खाने का मुझे लोभ है। मैं क्षणभर में ही समुद्रतटवर्ती मलयपर्वत पर पहुँच गया हूँ।

जीमूतवाहन—(प्रसन्न होकर) अपनी देह देकर नाग को बचाते हुए जो मैंने पुण्य प्राप्त किया है उसके प्रताप

से मुझे जन्म-जन्मान्तर में परोपकार के लिये ही दे[illegible] मिले ।

गरुड़—(जीमूतवाहन को देखकर) शेष नागों की रक्षा के लिये वध्य-शिला पर यह नाग पड़ा है । लाल कपड़े से ढके होने के कारण यह नाग ऐसा प्रतीत होता है मानो मेरे भय-मात्र से इसका हृदय फट गया है और बहते हुए रुधिर से लथपथ हो रहा है । वज्रदण्ड के समान भीषण चोंच से पकड़कर मैं इसे खाने के लिये उठा ले चलता हूँ ।

(झपटकर जीमूतवाहन को उठा लेता है । आकाश से पुष्पवृष्टि होती है और दुन्दुभियों का शब्द होता है)

गरुड़—(आश्चर्य से) आकाश से भँवरों को प्रसन्न करने वाली इस पुष्पवृष्टि का क्या कारण है ? स्वर्ग में दुन्दुभियों का शब्द भी चारों दिशाओं में गूँज रहा है ? (हँसकर) अरे ! मैं समझ गया । मेरे वेग की पवन से पारिजात वृक्ष हिल गया है और स्वर्ग भी प्रलय की शंका से मेघ आदि [illegible] गर्जने लगे हैं ।

जीमूतवाहन—(स्वगत) अहोभाग्य ! मैं कृतकृत्य हुआ ।

गरुड़—(जीमूतवाहन को [illegible]) नागों का [illegible] [illegible] मुझे

भारी जान पड़ता है। आज यह नाग मेरी नाग खाने की लालसा को मिटा देगा। अब मैं मलयपर्वत की चोटी पर चढ़कर इसे सानन्द खाता हूँ।

(जीमूतवाहन को लेकर उड़ जाता है)

पटाक्षेप

पाँचवाँ अंक

स्थान—विश्वावसु के राज-प्रासाद के समीप

(सुनन्द प्रतिहार का प्रवेश)

सुनन्द—यदि अपना कोई प्रिय सम्बन्धी अपने घर के बाग़ में ही गया हो तो भी स्नेह के कारण उसके विषय में अनेक प्रकार की शंकाएँ उठती हैं ! फिर साक्षात् विपत्तियों से भीषण जंगल में जाने पर तो कहना ही क्या है ? कुमार जीमूतवाहन समुद्र की सैर करने गये थे । उन्हें लौटने में देर हो रही है । इसलिये महाराज विश्वावसु चिन्तित हैं । उन्होंने मुझे आज्ञा दी है कि "सुनन्द ! मैंने सुना है कि जीमूतवाहन उस भयानक स्थान पर गया हुआ है जहाँ गरुड़ नागों को खाया करता है । वहाँ उसे देर हो गई है । अतएव मुझे शंका हो रही है । तुम शीघ्र पता लगाओ कि वह अपने घर पहुँचा है या नहीं।" तो चलूँ। (घूमकर सामने देखकर) अहो ! जीमूतवाहन के पिता जीमूतकेतु कुटिया के आँगन में बैठे हैं । उनकी धर्मपत्नी तथा बहू मलयवती

जीमूतकेतु—(बाँई आँख का फरकना सूचित करके) भद्र ! जीमूतवाहन के विषय में क्या कहा ?

सुनन्द—जीमूतवाहन के विषय में जानने के लिये मुझे महाराज विश्वावसु ने आपके पास भेजा है । कृपया बताइए कि मैं स्वामी को जाकर क्या निवेदन करूँ ?

महारानी—(दुख से) महाराज ! यदि मेरा पुत्र वहाँ भी नहीं है तो कहाँ गया होगा जो इतना विलम्ब कर रहा है ?

जीमूतकेतु—कदाचित् हमारे लिये आहार ढूँढ़ने को दूर चला गया होगा ।

मलयवती—(विषाद से) मुझे तो स्वामी को न देखकर कुछ और ही शंका हो रही है ।

सुनन्द—आज्ञा दीजिये, मैं जाकर स्वामी से क्या निवेदन करूँ ?

जीमूतकेतु—(बाँई आँख का फरकना सूचित करके) जीमूतवाहन के आने में विलम्ब हो रहा है । इससे मुझे चिन्ता हो रही है । (आँख की ओर संकेत करके) ऐ वाम नेत्र ! मेरे अनिष्ट की सूचना देकर तुम वार-वार क्यों फरक रहे हो ? ऐ दुष्ट नेत्र ! तेरा फरकना

जीमूतकेतु—देवी ! इसने बात तो ठीक कही है । संभव है ऐसे ही हो ।

महारानी—सुनन्द ! कदाचित् अब तक मेरा लड़का ससुराल में ही आ गया हो । इसलिये जाओ, पता लगाकर जल्दी ही हमें समाचार दो ।

सुनन्द—जैसे आपकी आज्ञा । (प्रस्थान)

जीमूतकेतु—देवी ! कदाचित् यह नाग की चूड़ामणि हो ।

(लाल वस्त्र पहने हुए शंखचूड़ दूर से दिखाई देता है)

शंखचूड़—(आँसू भरकर) शोक ! हा ! महाशोक ! ज्यों ही मैं समुद्र के किनारे भगवान् गोकर्ण महादेव को शीघ्रता से प्रणाम करके नागों की वध्य-शिला पर पहुँचा, त्यों ही गरुड़ चोंच और पञ्जों से विद्याधर की छाती को फाड़कर उसे आकाश को ले उड़ा । (रोकर) हा अकारणबन्धु ! हा परमदयालु ! हा परदुःख-दुःखित ! तुम कहाँ चले गये ? मुझे उत्तर दो । हा पापी शंखचूड़ ! तुमने क्या किया ? नागों को बचाकर मैंने एक-मात्र यश भी न पाया, ना ही अपने स्वामी की माननीय आज्ञा का पालन किया । दूसरे व्यक्ति ने अपने प्राण देकर मुझे बचाया है । इसलिये मेरी दशा बड़ी ही शोचनीय है । हाय

जीमूतकेतु—(सुनकर प्रसन्नता से) देवी ! दुखी मत होओ। यह चूड़ामणि इसकी है। कोई पक्षी मांस के भ्रम से इसके सिर से उखाड़ कर ले जा रहा होगा और ले जाते हुए यहाँ गिर पड़ी।

महारानी—(प्रसन्नता से मलयवती को छाती से चिपटाकर) सौभाग्यवती ! धीरज धरो। ऐसी मूर्ति वैधव्य-दुःख नहीं भोगेगी।

मलयवती—(प्रसन्नता से) हाँ, माता ! आपके आशीर्वाद से।

(पाँचों पढ़ती है)

जीमूतकेतु—वत्स ! घबराये हुए से क्यों दीखते हो ?

शंखचूड़—दुख के कारण आँसुओं से गला रुँध रहा है, इसलिये कुछ कह नहीं सकता।

जीमूतकेतु—पुत्र ! तुम अपना दुख मुझे सुना दो। उसके सुनने से मुझे कुछ दुख न होगा क्योंकि मेरे भीतर पुत्र-विनाश का दुख विद्यमान है।

शंखचूड़—सुनिए ! मेरी बारी आने पर वासुकी ने मुझे गरुड़ के आहार के लिये भेजा था। बात को बढ़ाने से क्या ? कहीं यह रुधिर-धारा धूल पड़ने से मिट न जाय। इसलिये संक्षेप से कहता हूँ। किसी दयालु विद्याधर ने गरुड़ को अपना शरीर अर्पण करके मेरे प्राण बचा लिए हैं।

जीमूतकेतु—(सुनकर प्रसन्नता से) देवी ! दुखी मत होओ। यह चूड़ामणि इसकी है। कोई पक्षी माँस के भ्रम से इसके सिर से उखाड़ कर ले जा रहा होगा और ले जाते हुए यहाँ गिर पड़ी।

महारानी--(प्रसन्नता से मलयवती को छाती से चिपटाकर) सौभाग्यवती ! धीरज धरो । ऐसी मूर्ति वैधव्य-दुःख नहीं भोगेगी।

मलयवती—(प्रसन्नता से) हाँ, माता ! आपके आशीर्वाद से।

(पाँओं पड़ती है)

जीमूतकेतु—वत्स ! घबराये हुए से क्यों दीखते हो ?

शंखचूड़—दुख के कारण आँसुओं से गला रुँध रहा है, इसलिये कुछ कह नहीं सकता।

जीमूतकेतु—पुत्र ! तुम अपना दुख मुझे सुना दो। उसके सुनने से मुझे कुछ दुख न होगा क्योंकि मेरे भीतर पुत्र-विनाश का दुख विद्यमान है।

शंखचूड़—सुनिए ! मेरी बारी आने पर वासुकी ने मुझे गरुड़ के आहार के लिये भेजा था। बात को बढ़ाने से क्या ? कहीं यह रुधिर-धारा धूल पड़ने से मिट न जाय। इसलिये संक्षेप से कहता हूँ। किसी दयालु विद्याधर ने गरुड़ को अपना शरीर अर्पण करके मेरे प्राण बचा लिए हैं।

जीमूतकेतु—(दुख से) ऐसा परोपकारी और कौन हो सकता है? स्पष्ट ही कह दो कि तुम्हारे पुत्र जीमूतवाहन ने। (माथे पर हाथ रख कर) हा, मेरे भाग्य फूट गये!

महारानी—हाय पुत्र! तुमने यह क्या किया?

मलयवती—हाय! क्या वह दुःशंका सत्य ही निकली।

(सब अचेत हो जाते हैं)

शंखचूड़—(आँसू भरकर) अहो! अवश्य ही ये इस महापुरुष के माता-पिता हैं। बुरा समाचार देकर मैंने इनकी यह दशा कर दी है। भला नाग के मुख से विष के सिवा और क्या निकलेगा। अहो! शंखचूड़ ने प्राणदाता के उपकार का अच्छा बदला चुकाया। तो क्या मैं अभी आत्मघात कर लूँ? अथवा पहले इन्हें सचेत करूँ। (पास जाकर) तात! धीरज धरो। माता! धीरज धरो।

(दोनों सचेत हो जाते हैं)

[illegible]

[illegible]

मलयवती—(स्वगत) मुझ अभागिनी को तो उनके दर्शन दुर्लभ-से प्रतीत होते हैं।

जीमूतकेतु—पुत्र शंखचूड़! तेरी यह वाणी भले ही सत्य हो, फिर भी हमारा अग्नि साथ ही लेकर जाना ठीक है। तुम चलो, हम भी यज्ञशाला से आग लेकर शीघ्र ही पीछे-पीछे आते हैं।

(स्त्री और बहू के साथ जीमूतकेतु का प्रस्थान)

शंखचूड़—तो गरुड़ के पीछे चलूँ। (घूमकर आगे देखकर) गरुड़ मलयपर्वत के शिखर पर बैठा दिखाई दे रहा है। कान्ति से सनी हुई चोंच को घिसकर इसने पर्वत-शिलाओं पर गड्ढे कर दिए हैं। अपनी आँखों के तेज की ज्योति पुंज से वनभूमि को जला दिया है। वज्र के समान कठोर और भयंकर नखों को पृथ्वी में गाड़ रक्खा है।

(आसन पर बैठे गरुड़ का प्रवेश। सामने जीमूतवाहन आ रहा है)

[illegible]

इस धैर्य-सागर के मुख पर कोई मलिनता नहीं आई। मांस नोचने की पीड़ा को सहन करते हुए भी इसका मुख हर्ष के कारण प्रसन्न है। खाने से जो अंग शेष रहे हैं उन पर रोमाञ्च स्पष्ट दिखाई दे रहा है। मुझ अपकारी पर भी इसकी दृष्टि ऐसे पड़ रही है मानो मैंने इसका उपकार ही किया हो। इसके इस धीरज को देखकर मेरे हृदय में आश्चर्य उत्पन्न हो गया है। अच्छा, मैं इसे खाऊँ नहीं। पहले इससे पूछूँ कि तू कौन है?

जीमूतवाहन—अभी मेरी नाड़ियों में से रक्त बह रहा है, मेरे शरीर में माँस भी शेष है, आपकी तृप्ति भी नहीं हुई है, फिर आप मुझे खाने से क्यों रुक गये?

गरुड़—(स्वगत) अहो! बड़ा आश्चर्य है! क्या बात है कि यह इस अवस्था में भी ऐसे तेजस्वी वचन बोल रहा है? (प्रकट) मैंने तो चोंच से तुम्हारे हृदय से रक्त निकाल कर पिया है किन्तु तुमने इस धैर्य से फिर वह रक्त मेरे हृदय से निकाल लिया है। कहो, तुम कौन हो यह मैं जानना चाहता हूँ।

जीमूतवाहन—तुम भूख से बहुत दुखी हो, तुम्हें यह वृत्तान्त

सुनना ठीक नहीं। तुम पहले मेरे रक्त और मांस से अपनी तृप्ति कर लो।

शंखचूड़—(शीघ्रता से पास जाकर) देखना, ऐसा साहस मत करना। यह नाग नहीं है। इसे छोड़ दो। मुझे खाओ। मुझे ही तुम्हारे खाने के लिये वासुकी ने भेजा था। (छाती आगे करता है)

जीमूतवाहन—(शंखचूड़ को देखकर दुख से स्वगत) शोक ! शंखचूड़ के आ जाने से मेरा मनोरथ निष्फल हो गया।

गरुड़—(दोनों को देखकर) आप दोनों के पास वध्य-चिह्न हैं। कौन-सा नाग है, मैं यह नहीं जान सका।

शंखचूड़—आप का भ्रम व्यर्थ है। छाती पर स्वस्तिक चिह्न का विचार न करो तो भी क्या मेरे शरीर पर केंचुली दिखाई नहीं देती? क्या मेरे बोलने पर तुमने मेरी दो जिह्वायें भी नहीं गिनीं? तीव्र विषाग्नि के धुएँ से मेरे फणों के रत्नों की आभा मलिन हो गई है। अपने शोक के उच्छ्वासों से फैले हुए मेरे ये तीन फण भी क्या तुम नहीं देखते?

गरुड़—(शंखचूड़ के फण और जीमूतवाहन को देखकर) मैंने फिर किसे ग्रस लिया है?

शंखचूड़—विद्याधर-राजवंश के तिलक जीमूतवाहन को । तुझ निर्दय ने यह क्या कर डाला ?

गरुड़—अरे ! क्या यह वही विद्याधर-कुमार जीमूतवाहन है जिसका यशोगान गन्धर्व लोग मलयाचल, हिमाचल आदि पर्वतों पर करते हैं ? लोकालोक, मेरु, महेन्द्र और कैलाश पर्वतों पर भी इस महानुभाव की यश-पताका फहरा रही है। अब सचमुच ही सब कहीं मेरा अपयश होगा।

जीमूतवाहन—शंखचूड़ ! इतने व्याकुल क्यों हो ?

शंखचूड़—क्या यह व्याकुलता का अवसर नहीं ? क्या आप के लिये उचित है कि अपने शरीर द्वारा गरुड़ से मेरे शरीर की रक्षा करके आप मुझे पाताल से भी नीचे पहुँचा दें ?

गरुड़—अहा ! इस दयालु महानुभाव ने मेरे पंजे में आने वाले इस नाग के प्राणों की रक्षा के लिये अपना शरीर मुझे खाने को दे दिया है । यह तो मैंने इसे घायल कर भारी पाप कर डाला। अधिक क्या ? यह तो बोधिसत्त्व को ही मार डाला है। अब इस भारी पाप का प्रायश्चित अग्नि-प्रवेश के बिना दूसरा नहीं है । कहाँ से अग्नि लाऊँ ? (इधर-उधर देखकर) अहा ! ये कुछ

लोग आग लिए इधर ही आ रहे हैं। तो इनकी प्रतीक्षा करूँ।

शंखचूड़—कुमार! यह आपके माता-पिता आ रहे हैं।

जीमूतवाहन—(घबराकर) शंखचूड़! आओ। यहाँ बैठकर इस दुपट्टे से मेरा शरीर ढक दो और मुझे पकड़ रक्खो। नहीं तो माता मुझे ऐसी दशा में देखकर कहीं प्राण न छोड़ दें।

(शंखचूड़ पास पड़े हुए दुपट्टे को उठाकर वैसे ही करता है। पत्नी तथा बहू के साथ जीमूतकेतु का प्रवेश)

जीमूतकेतु—(आँसू भरकर) हा पुत्र जीमूतवाहन! यह बात ठीक है कि दया में अपने-पराये का विचार कभी नहीं होता? फिर भी क्या एक की रक्षा करनी चाहिये या बहुतों की, यह विचार तेरे मन में क्यों न आया? गरुड़ से नागों को बचाने के लिये अपने प्राण देकर तुमने अपना जीवन, अपने माता-पिता, अपनी स्त्री, तथा सारे वंश का नाश कर दिया है।

मलयवती—(आँसू भरकर) हा, स्वामी! [illegible]

[illegible]

[illegible]

जीमूतवाहन—तात ! आप मुझे आज्ञा दें ताकि मैं इसे इस पाप का प्रतिकार बता दूँ।

जीमूतकेतु—पुत्र ! बता दो !

जीमूतवाहन—गरुड़ ! सुनो ।

गरुड़—(घुटनों के बल बैठकर हाथ जोड़कर) आज्ञा कीजिये ।

जीमूतवाहन—जीव-हिंसा सदा के लिये छोड़ दो । पहले किये पाप के लिये पश्चात्ताप करो । सब जीवों को अभयदान देकर, यत्नपूर्वक पुण्य का सञ्चय करो जिससे जीव-हिंसा से उत्पन्न हुआ पाप फल न दे सके । इस पुण्यप्रवाह में पाप डूबकर ऐसे नष्ट हो जायगा जैसे कि गहरे तालाब में डाला हुआ एक पलभर नमक ।

गरुड़—जैसी आपकी आज्ञा । अज्ञान की घोर निद्रा में सोते हुए मुझे आपने जगा दिया है । आपके उपदेश से आज मैंने सब जीवों का वध छोड़ दिया । अब यह नागों की जाति निश्चिन्त होकर इस बड़े समुद्र में सुख-पूर्वक विहार करे । यह नाग-समूह कहीं अपने विस्तृत फणों के द्वारा सीप की नाईं प्रतीत होगा । कहीं शरीर को कुण्डलित कर लेने से भँवर का भ्रम उत्पन्न करेगा । कहीं एक तट से दूसरे तट तक जाती

जीमूतवाहन—तात ! आप मुझे आज्ञा दें ताकि मैं इसे इस पाप का प्रतिकार बता दूँ।

जीमूतकेतु—पुत्र ! बता दो !

जीमूतवाहन—गरुड़ ! सुनो।

गरुड़—(घुटनों के बल बैठकर हाथ जोड़कर) आज्ञा कीजिये।

जीमूतवाहन—जीव-हिंसा सदा के लिये छोड़ दो। पहले किये पाप के लिये पश्चात्ताप करो। सब जीवों को अभयदान देकर, यत्नपूर्वक पुण्य का सञ्चय करो जिससे जीव-हिंसा से उत्पन्न हुआ पाप फल न दे सके। इस पुण्यप्रवाह में पाप डूबकर ऐसे नष्ट हो जायगा जैसे कि गहरे तालाब में डाला हुआ एक चमच नमक।

गरुड़—जैसे आपकी आज्ञा। अज्ञान की घोर निद्रा में सोते हुए मुझे आपने जगा दिया है। आपके उपदेश से आज मैंने सब जीवों का वध छोड़ दिया। अब यह नागों की जाति निश्चिन्त होकर इस बड़े समुद्र में सुख-पूर्वक विहार करे। यह नाग-समूह कहीं अपने विस्तृत फणों के द्वारा द्वीप की नाईं प्रतीत होगा। कहीं शरीर को कुण्डलित कर लेने से भँवर का भ्रम उत्पन्न करेगा। कहीं एक तट से दूसरे तट तक जाता

महारानी—(मलयवती के मुँह को हाथ से पोंछती हुई) पुत्री ! ऐसे मत कहो । यह कहना ठीक नहीं है ।

जीमूतकेतु—(रोकर) सब अंगों के नाश हो जाने से कुमार निराश्रय हो गया है । कंठ तक आये हुए प्राणों को छोड़ रहा है । पुत्र को ऐसी दशा में देखकर मुझ पापी के सौ टुकड़े क्यों नहीं होजाते ?

मलयवती—मैं बड़ी कठोर-हृदय हूँ जो स्वामी की इस दशा को देखकर भी अभी तक जी रही हूँ ।

महारानी—(जीमूतवाहन के अंगों को छूकर गरुड़ से) हे क्रूर ! तूने नव यौवन और रूप से शोभित मेरे पुत्र का शरीर कैसे इस अवस्था को पहुँचा दिया है ?

जीमूतवाहन—माता ! यह बात नहीं है । इसने क्या किया है ? पहले भी वास्तव में यह शरीर ऐसे ही था । त्वचा से ढँके हुए मेदा, अस्थि, मज्जा, मांस और रुधिर के समूह-रूप सदा बीभत्स दर्शन वाले इस शरीर में शोभा ही क्या है ?

गरुड़—हे महात्मन ! नरकरूपी अग्नि की ज्वालाओं से मानो मैं अभी जला जा रहा हूँ । मैं बड़े दुःख में बैठा हूँ । इसलिये बताइये कि इस पाप से कैसे मुक्त होऊँ ।

जीमूतवाहन—तात ! आप मुझे आज्ञा दें ताकि मैं इसे इस पाप का प्रतिकार बता दूँ।

जीमूतकेतु—पुत्र ! बता दो !

जीमूतवाहन—गरुड़ ! सुनो।

गरुड़—(घुटनों के बल बैठकर हाथ जोड़कर) आज्ञा कीजिये।

जीमूतवाहन—जीव-हिंसा सदा के लिये छोड़ दो। पहले किये पाप के लिये पश्चात्ताप करो। सब जीवों को अभयदान देकर, यत्नपूर्वक पुण्य का सञ्चय करो जिससे जीव-हिंसा से उत्पन्न हुआ पाप फल न दे सके। इस पुण्यप्रवाह में पाप डूबकर ऐसे नष्ट हो जायगा जैसे कि गहरे तालाब में डाला हुआ एक चमच नमक।

गरुड़—जैसे आपकी आज्ञा। अज्ञान की घोर निद्रा में सोते हुए मुझे आपने जगा दिया है। आपके उपदेश से आज मैंने सब जीवों का वध छोड़ दिया। अब यह नागों की जाति निश्चिन्त होकर इस बड़े समुद्र में सुख-पूर्वक विहार करे। यह नाग-समूह कहीं अपने विस्तृत फणों के द्वारा द्वीप की नाईं प्रतीत होगा। कहीं शरीर को कुण्डलित कर लेने से भँवर का भ्रम उत्पन्न करेगा। कहीं एक तट से दूसरे तट तक जात

हुआ सेतु के समान दीखेगा । अँधेरे के समान काले-काले बालों वाली नाग-युवतियाँ, शरीर के थकने पर भी थकान को न मानती हुई, इस चन्दन-वन में प्रेम-पूर्वक तुम्हारा ही यश गावें । घोर अन्धकार के समान उनके काले-काले खुले हुए केश-कलाप पैरों पर पड़ गये हों । उनके गालों पर, सूर्य की किरणों के पहली बार पड़ने से, लाल रंग आ गया हो मानो सिन्दूर मल लिया हो !

जीमूतवाहन—ठीक है, महाभाग ! ठीक है । मैं प्रसन्न हूँ । सदा दृढ़प्रतिज्ञ बने रहो । (शंखचूड़ की ओर देखकर) शंखचूड़ ! अब तुम भी अपने घर जाओ ।

(शंखचूड़ गहरा साँस लेकर नीचे मुँह किये खड़ा रहता है)

जीमूतवाहन—(गहरा साँस लेकर माता को देखकर शंखचूड़ से) तुझे गरुड़ की चोंच से कटा-फटा समझती हुई तेरी माता तेरे दुःख से बहुत दुःखी होगी ।

महारानी—वह माता धन्य है जो गरुड़ के मुँह में जाने पर भी अपने पुत्र को सकुशल देखेगी ।

शंखचूड़—माता ! वह ठीक ही होगा यदि कुमार स्वस्थ रहें ।

जीमूतवाहन—(पीड़ा अनुभव करके) अहह ! प्राणत्याग में

लगे रहने के कारण इतनी देर तक तो मुझे कष्ट प्रतीत न हुआ। अब मुझे पीड़ा दुखी करने लगी है।

(मरने की दशा का नाट्य करता है)

जीमूतकेतु—(घबराकर) हा पुत्र! ऐसे क्यों कर रहे हो?

महारानी—हाय! यह क्या हो रहा है? बचाओ बचाओ, मेरा पुत्र मर रहा है।

मलयवती—हा स्वामी! मुझे छोड़कर जाते दिखते हो?

जीमूतवाहन—(हाथ जोड़ना चाहता है) शंखचूड़! मेरे हाथों को जोड़ दो।

शंखचूड़—शोक! जगत् अनाथ होगया।

जीमूतवाहन—(अधखुली आँखों से माता-पिता को देखकर) यह मेरा अन्तिम प्रणाम है। मेरे अंग अब शिथिल होते जा रहे हैं। स्पष्ट वचनों को भी कान नहीं सुनते। आँखें अपने आप बंद हुई जा रही हैं। हा तात! मैं विवश हूँ। मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। अथवा इस रोने से क्या लाभ? एक नाग को अपने शरीर द्वारा बचाकर जो कुछ मुझे पुण्य मिला हो उससे मुझे प्रत्येक जन्म में परोपकार के लिये शरीर मिले।

जीमूतकेतु—(रोकर) हा पुत्र जीमूतवाहन! हा सर्वजनप्रिय!

आया । अब मेरा कलंक धुल गया समझो । तो इन्द्र से प्रार्थना करके उससे अमृतवर्षा कराता हूँ । उससे केवल जीमूतवाहन को ही नहीं किन्तु इन पहले खाए हुए अस्थिशेष नागों को भी जीवित करता हूँ । यदि वह अमृत न देगा तो मैं पंखों से समुद्र को उछाल दूँगा और अपनी तीव्र गति से वायु को प्रेरित करके, अपनी आँखों की ज्वालाओं से अग्नि-सहित बारह सूर्यों को निष्प्रभ कर दूँगा । फिर चोंच से इन्द्र के वज्र, कुबेर की गदा और यम के दण्ड को छिन्न-भिन्न कर दूँगा और अमृत में अपने पंख डुबोकर क्षणभर में अमृत की वर्षा कर दूँगा । तो लो, मैं यह चला ।

(उड़ जाता है)

जीमूतकेतु—शंखचूड़ ! देर क्यों कर रहे हो ? लकड़ियां इकट्ठी करके चिता बनाओ ताकि पुत्र के साथ ही हम भी भस्म हो जायें ।

महारानी—बेटा शंखचूड़ ! जल्दी करो । हमारे बिना सचमुच तुम्हारा भाई दुखी हो रहा होगा ।

शंखचूड़—(रोकर) जो आप आज्ञा दें । मैं तो इस बात के लिये पहले से ही तैयार हूँ । (उठकर चिता बनाकर) तात ! चिता तैयार कर दी है ।

जीमूतकेतु—हाय ! शोक ! महाशोक !! सिर पर चक्रवर्ति-पद का सूचक उष्णीष है, भौंहों के बीच ऊर्णा शोभित हो रही है, नेत्र रक्त-कमल के समान हैं, वक्षःस्थल सिंह की छाती के तुल्य है, चरणों पर चक्रों के चिह्न हैं, तब भी, हाय वत्स ! मेरे पापों के कारण तुम चक्रवर्ति-पद प्राप्त किए बिना परलोक को जा रहे हो ! देवी ! क्यों रोती हो ? उठो, चिता पर चढ़ें ।

मलयवती—(हाथ जोड़कर ऊपर देखती हुई) भगवती गौरी ! आपने वर दिया था कि "तेरा पति विद्याधर-चक्रवर्ती होगा ।" सो मुझ मन्दभागिनी के लिये आप भी असत्यवादिनी कैसे हो गई ?

(आकाश में गौरी का प्रवेश)

गौरी—महाराज जीमूतकेतु ! बस, ऐसा साहस मत करो ।

जीमूतकेतु—अहा ! क्या अमोघदर्शना गौरी आगई ?

गौरी—(मलयवती की ओर) पुत्री मलयवती ! मैं झूठी क्यों कर हो सकती हूँ ? देख, (जीमूतवाहन के पास जाकर कमण्डल का जल उस पर छिड़कती है) वत्स जीमूतवाहन ! तुम अपने प्राणों द्वारा भी औरों का उपकार करने वाले

हो। मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम जीवित हो जाओ।

(जीमूतवाहन जीवित होकर उठ खड़ा होता है)

जीमूतकेतु—(प्रसन्नता से) देवी! बड़े सौभाग्य की बात है कि जीमूतवाहन जीवित हो उठा है।

महारानी—(सहर्ष) भगवती की कृपा से।

(दोनों गौरी के पैरों में गिरने के बाद जीमूतवाहन को गले लगाते हैं)

मलयवती—(सहर्ष) अहोभाग्य! स्वामी जी उठे।

(गौरी के चरणों में गिरती है)

जीमूतवाहन—(गौरी को देखकर हाथ जोड़कर) भगवती! इच्छा से भी अधिक वर देने वाली! भक्त-जनों के दुख को दूर करने वाली! दीनों की शरण! विद्याधरों की कुल-देवता गौरी! मैं तुम्हारे चरणों में प्रणाम करता हूँ। (पैरों में गिरता है)

(सब ऊपर की ओर देखते हैं)

जीमूतकेतु—यह बिना मेघों के वर्षा कैसी?

गौरी—महाराज! जीमूतवाहन को और इन पहले खाए हुए अस्थि-मात्र शेष नागों को जीवित करने के लिये पश्चा-त्ताप करते हुए गरुड़ ने यह देवलोक से अमृत-वर्षा की है। (उंगली से दिखाकर) क्या आप महाराज देखते

हो सकता है ? इस शंखचूड़ को गरुड़ के मुँह से बचाया। गरुड़ को भी शिक्षा दी। पहले खाए हुए नाग भी जी गये। प्राण-रक्षा के कारण मेरे माता-पिता ने भी प्राण न छोड़े। आप से चक्रवर्ती का पद मिला। आपके साक्षात् दर्शन हुए। इससे अधिक और क्या प्रिय हो सकता है जिसकी प्रार्थना करूँ? तो भी इतना हो जाय—

जगत में छा जाए उल्लास
खुशियाँ लाएँ सारी ऋतुएँ,
लाएँ सुखकर वास
वर्षा में गरजें नूतन घन
सुन-सुन उनका मादक गर्जन
मोर करें पृथ्वी पर नर्तन
पुष्प लुटाता अपने पथ में
आजाए मधुमास
आपदाएँ सपना हो जाएँ
विस्मृति में जाकर खो जाएँ
दुख, चिरनिद्रा में सो जाएँ
जाग उठें, सुख लेकर अपने
अंचल में नव-श्वास

पटाक्षेप